श्री द्वा० ग्र० माला का दशम पुष्प,

रसिक-रसाल

रचयिता

कविवर

पो० कुमारमणि शास्त्री

(सं० १७७६)

सम्पादक

पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद

प्रकाशक

(श्री द्वारकेश कवि-मण्डल)

श्रीविद्या विभाग

कांकरोली

५०० प्रति } दशाब्दी महोत्सव सं० १९९४ { मूल्य १।)

कविवर पं० कुमारमणि शास्त्री

(जीवनी और उनके ग्रन्थ)

जन्म
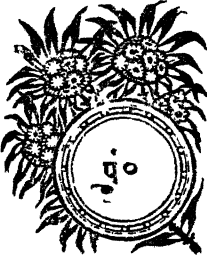
कुमारमणि शास्त्री के पिता का नाम शास्त्री हरिवल्लभ भट्ट था। यह श्रीवत्सगोत्री पंचप्रवरान्वित ऋग्वेदी शाकल-शाखाध्यायी तैलंग ब्राह्मण थे। इनका 'पोतकृत्ति' उपाह्व था। कुमारमणि ने अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया है—

"माधव पण्डितराज रुद्रग-शिष्ट मनीषि वल्लभद्रम्।
मधुसूदन कवि पण्डित मुख्यान्प्रणमामि पूर्वभवान्॥
हरिवशज, चतुर्भुज—पौत्र, बुधरुद्रणस्य नप्तारम्।
श्रीमत्पितामहमहं कण्ठमणिं नौमि महितगुणम्॥
पितुरग्र्य सहपित्रा नत्वा निरवद्यविद्यवेदमणिम्।
विरचयति सूक्तिसंग्रह मान्ध्रकुलानः कुमारमणि॥

इनके पिता पं० हरिवल्लभ शास्त्री माधव पण्डितराज के

---

* अप्रकाशित 'रसिक रंजन' सप्तशती।

वंशज, प० कण्ठमणि शास्त्री के द्वितीय पुत्र थे। यह हरिवल्लभजी प्रसिद्ध पौराणिक, धर्मशास्त्रज्ञ तथा हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं†। इनके पूर्वपुरुष दक्षिण-भारत से १४ से १५वीं शताब्दी के बीच में आकर उत्तर-भारत मध्यप्रान्त में बस गए थे।

कुमारमणि कवि का जन्म सं० १७२० से २५ के भीतर मानना चाहिये। यद्यपि 'शिवसिंह सरोज' के आधार पर मिश्रबधु विनोद के प्रथम संस्करण में इनको दास-काल (सं० १७९१ से १८१०) का कवि माना गया था, पर वह मेरे संशोधन उपस्थित करने पर द्वितीय संस्करण में सुधार दिया गया है। उक्तजन्म संवत् मानने में इनकी ग्रन्थ-रचना का काल ही मुख्य है, जो कवि की प्रौढावस्था का द्योतक है। कवि के रचित 'रसिक-रञ्जन' तथा 'रसिक रसाल' की रचना क्रमश सं० १७६५ और १७७६ में पूर्ण हुई है। प्रस्तुत विषय में ग्रन्थकार यह लिखते हैं—

'कथिता 'कुमार' कविना प्रथिता रसिकानुरञ्जने प्रथिता।
सप्तशती शरषण्मुखमुखसिंधुविधिश्रिते (१७६५) राधे॥" र० र०
रससागररवितुरगविधु (१७७६) सम्वत मधुर वसन्त।
विकस्यौ "रसिक रसाल' लखि हुलसत सुहृद व सन्त॥" र० र०

कवि का उक्त ज० सं० मानने में दूसरा कारण कम से कम सं० १७७९ तक उनकी उपस्थिति भी है। कवि का स्वहस्त लिखित 'किरणावलि' नामक ग्रंथ प्राप्त होता है, जो उक्त

† देखो—'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि" नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ

सं० मे लिखा गया है। उक्त आधारों से यह निःसंदिग्ध हो जाता है कि—कवि कुमारमणि का जन्म सं० १७२० से २५ के भीतर हुआ है।

अध्ययन और पांडित्य

पं० कुमारमणि का शास्त्राध्ययन वाजपेयी उपनामक भारद्वाजगोत्री मंडन कवि के द्वितीय पुत्र पं० पुरुषोत्तम जी के पास हुआ था। 'रसिक रंजन' में कवि ने अपने गुरु का स्मरण इस प्रकार किया है—

"मण्डन-तनूजमनुजं जयगोविंदस्य वन्द्य गुणवृन्दम्।
श्रीमन्त पुरुषोत्तममिव गुरु पुरुषोत्तम वन्दे॥"

'रसिक रसाल' मे कवि ने इसी विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"सुर-गुरुसम मंडन-तनय बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित - रीति गुरु - पद परसि अरु पुरुषोत्तम पाइ॥"

उक्त दोनो पद्यो के आलोचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि—कवि कुमारमणि के हिंदी - भाषा - शास्त्र के पं० जयगोविंद वाजपेयी और संस्कृत - साहित्य के गुरु उनके लघु भ्राता पं० पुरुषोत्तम वाजपेयी थे। कवि मंडनजी तथा उनके उक्त दोनों पुत्र हिंदी एवं संस्कृत - साहित्य के प्रकाण्ड पंडित और कवि हुए है*।

* देखो—'आन्ध्रजातीय हिंदी कवि' नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ।

'रसिक रसाल' एवं 'रसिकरंजन' के परिशीलन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि—कुमारमणि का पण्डित्य दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रकाशमान् था। उनके स्वार्थ स्वहस्त-लिखित आकरग्रथो से उनके अन्य शास्त्रीय प्रकाण्ड वैदुष्य का भी परिचय मिलता है। पौराणिक वृत्ति इनकी वंशपरंपरागत थी, अत तद्विषयक विद्वत्ता मे सन्देह तो हो ही नहीं सकता। कहने का तात्पर्य यह कि—कवि कुमारमणि की प्रतिभा जिस प्रकार काव्य मे आबाध रूप से धावमान होती थी, उसी प्रकार वह अन्यविषयक शास्त्रों मे भी कण्ठित न थी। दोनों भाषाओं के पाण्डित्य से तो उन पर सोना सुगन्ध' ही कहावत चरितार्थ होती है। हिन्दी-भाषा-विषयक साहित्य के रीति-ग्रन्थ-निर्माण से हम उन्हे भाषा का आचार्य कह सकते हैं। जिस पद पर अभी तक हिंदी-साहित्य ने उन्हे समासीन नहीं किया है। इसका एकमात्र कारण उनके ग्रन्थ 'रसिक रसाल' का प्रचाराभाव ही कहा जा सकता है। पर वह दिन दूर नहीं है, जब इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही कवि को उक्त पद साहित्य-जगत द्वारा सहर्ष प्रदान किया जायगा।

परिवार

कवि कमारमणि के लघु भ्राता का नाम 'वासुदेव' था उनके नाम का स्मरण उन्होंनें 'रसिकरंजन' में किया है।

यह वासुदेव भट्ट अच्छे पौराणिक एवं साहित्यज्ञ होने के साथ ही साथ कवि भी थे। *

वासुदेव भट्ट का स्वर्गवास अल्प वय मे ही हो गया था जिसके मर्मान्तक शोक से सन्तप्त कुमारमणि की लेखनी अपना उद्गार इस प्रकार प्रकाशित करने को बाध्य हुई थी—

हा! विनयशील शालिन् शीलितशास्त्रार्थ, गण्यसामर्थ्य!
भ्रातर्जातः किमु मां प्रविहाय विहायसः पथिकः। र० रं० ५८०
काव्यसखे! पदवाक्यप्रमाणपरिहीन दीन निखिलगते।
विकलमिव भवसि लोके शोके नव वासुदेवस्य॥ र० रं० ५८१

उक्त दोनो आर्याओ का भाव सहृदय पाठकों के कोमल हृदय पर सीधी ठेस पहुँचाता हुआ कवि की वियोग-जन्य व्यथा का निदर्शन कराता है। उक्त वासुदेव कवि की निमित एक 'सप्तशती' थी, जिसके उदाहरण देकर कुमारमणि ने "अनुजसप्तशत्याः" इस पद से उसका स्मरण किया है। कवि ने 'रसिकरसाल' मे भी एक स्थान पर अपने भ्रातृ-वियोग का उल्लेख किया है—

संग सदा मिलि कीन्हौ निवास,
'कुमार' विलास हुलास घनेरौ,
संग मिले निसिवासर ध्यान,
न आन गन्यो सुख दुःख निवेरौ।

---

* देखो—'आन्ध्रजातीय' हिन्दी कवि नामक ग्रन्थ।

भाई चले, परलोक तुम्हें,
नहिं दीरन भौ हिय मेरो करेरौ,
जानि घनौ अपमान मनौ,
दृग मूंदि न देखत आन मेरौ ॥ ८ । १३

उक्त सवैया में कवि को हार्दिक भ्रातृ-वियोग का शोक उच्छलित हो रहा है। उत्प्रेक्षालंकार के साथ कवि ने क्या ही अच्छे ढंग से इस वियोग को परिदर्शित किया है। उक्त दोनो आर्या तथा सवैया से यह विदित होता है कि कुमारमणि का अपने अनुज पर कितना सहज स्नेह था। इसके साथ यह भी विज्ञात होता है कि कवि के अनुज वासुदेव साधारण व्यक्ति नहीं, प्रत्युत शास्त्र के कृतश्रम विद्वान् थे। आर्याओं के विशेषण इस कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं।

इन्हीं वासुदेव अनुज के स्वर्गवास हो जाने पर कवि कुमारमणि ने 'रसिकरंजन' का संग्रह किया है, जो उनकी स्मृति के अर्थ किया गया विज्ञात होता है। इस विषय मे ग्रन्थकार की एक आर्या इस प्रकार है —

अनुजन्मवासुदेवाभिधबुधतोषाय विविधिरसपोषम्।
सरसार्य्यासूक्तिमयं 'रसिक-मनोरंजनं' कुर्मः ॥ १० ॥ २०

इसी सूक्ति-संग्रह से 'कुमारमणि' तथा 'वासुदेव' कवि की स्वतंत्र आर्या सप्तशतियों के साथ 'मधुसूदन-सप्तशती' तथा अन्य कवियों की स्वतंत्र आर्याओं का भी हमे पता लगता

है इस ग्रंथ मे उल्लिखित २-३ कवियो का छोड़ शेष का तो नाम भी साहित्य-संसार मे प्रकट नहीं हुआ है। प्रस्तुत सग्रह से हमे बहुत कुछ साहित्य का परिज्ञान हुआ है, जो कालवश या तो लुप्त हो गया है अथवा किसी निभृत-कोण में छुपा हुआ पडा है।

प० कुमारमणि को अपने लघु भ्राता के वियोग के समान अपनी धर्मपत्नी का वियोग भी सहना पडा था, जो रसिक-रंजन की निम्नलिखित आर्याओ से ज्ञात होता है—

> अयि निर्णकान्तपात्र! नव्यदशे! सुमुखि! संवृतस्नेहे!
> मद्गेह दीपकलके! कथमुपयातासि निर्वाणम्॥ २-२ २८१
>
> त्वा हरता हतविधिना हृदय मे व्यरचि शैलपारमयम्।
> गृहिणि! वदेति च गृहशुकगाम्यञ्चरणापि नदभेदि॥ २७६

प्रथम आर्या यद्यपि 'लीलावतीकार' की है, तथापि प्रकरण-वश द्वितीय आर्या के साथ उसका सामञ्जस्य बैठाते हुए कहना पड़ता है कि—कवि कुमारमणि ने अपने पत्नी-वियोग को लक्ष्य कर ही ऐसा लिखा है। द्वितीय आर्या तो स्वयं ग्रंथ-कर्ता की ही है। अत तद्विषय मे कोई सन्दिग्ध प्रसग नहीं रह जाता। कवि की धर्मपत्नी किस गोत्र की थीं, कुछ पता नहीं चला है।

प्रथम पत्नी के दिवंगत हो जाने पर कुमारमणि ने अपना द्वितीय विवाह किया या नही, कुछ कहा नहीं जा सकता।

कवि के भोजराज और कृष्णदेव नामक दो पुत्र हुए। उक्त

दोनो पुत्रों का जन्म सं० १७६०-६५ के लगभग निर्धारित होता है। *

कुमारमणि ने अपने 'रसिकरंजन' मे 'मातुल जनार्दन' की आर्याओ का संग्रह किया है जिससे कहना पडेगा कि उनके तन्नामधेय एक मामा थे। उत्तर-भारतीय आन्ध्र-जाति मे तत्कालीन जनार्दन नामक दो कवि हुए है जिनमे एक पद्माकर के पितामह जनार्दन, तथा दूसरे गोस्वामी जनार्दन (बीकानेर) थे। इनका जन्म समय १७१८-२० के लगभग निर्धारित किया गया है। *

उक्त कवि के क्षेमनिधि नामक शिष्य थे, जो पद्माकर के पितृव्य एवं मोहन भट्ट के लघु भ्राता थे। इन्होने स्वहस्त-लिखित ग्रंथ मे प्रस्तुत प्रकरण इस प्रकार लिखा है—

"इति श्रीसंक्षेपभागवतामृते श्रीकृष्णचैतन्यचरिते श्रीकृष्णामृतं नाम पूर्वखण्ड समाप्तम्। सं० १७८२ आषाढ शुक्लाष्टम्या बुधवासरे। श्रीमद्गुरुकुमारमणि लिखितानुसारेण क्षेमनिधिना लिखितम्

पाषे वलक्षपक्षे पक्षतिभृगुवासरेऽलेखि
नेत्राङ्कसिन्धुसिन्धुज (१७९२) वर्षे प्रभो प्रीत्यै ॥

क्षेमनिधि के शिष्य होने से यह भी अनुमान होता है कि उनके बडे भ्राता मोहनभट्ट (पद्माकर के पिता) भी कुमार-मणि के समीप अध्ययन करते रहे हो।

---

* देखो— 'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि' नामक पुस्तक।

राज्याश्रय

यह हम पहले कह चुके हैं कि—कुमारमणि का सर्वव्यापी पाण्डित्य था, यह जिस प्रकार काव्य कला के मर्मज्ञ एवं सिद्ध-हस्त कवि थे, उसी प्रकार संस्कृत के प्रत्येक विषय के शास्त्रो में भी इनकी अबाध गति थी। पौराणिक वृत्ति इनकी वंश-परंपरागत थी। अतः यत्र तत्र इनके परिभ्रमण करते रहने में कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रसग तथा अपने काव्य-चमत्कार के कारण इनका अनेक राज्यों में आवागमन और सम्मान होता रहा होगा। मेरे स्व० पितृव्य श्रीकृष्णशास्त्रीजी द्वारा मुझे यह ज्ञात हुआ था कि कुमारमणि को 'झारखड' में सम्मान से कुछ भूमि प्राप्त हुई थी जो आगे चलकर वंशजो की उपेक्षा तथा राज्य-क्रान्ति के कारण हस्तान्तरित हो गई।

कुमारमणि ने 'रसिकरसाल' म कईवार 'रामनरेद्र' का गुण गाया है। तद्विषयक कुछ पद्य इस प्रकार हैं—

'रामनरपाल को निहारि रन ख्याल खग्ग—
खुलें विकराल दिगपाल कसकात हैं ॥'

''रामनरिंद की फौज पयान०'' ''रामजू की जसलता०''

''रामनरिंद तिहारे पयान०'' इत्यादि

इससे अवगत होता है कि किसी 'राम' नामधारी नरेश के यह आश्रित थे, अथवा उसके यहाँ इन्हे सन्मान प्राप्त होता रहता था। संभव है 'रसिक रसाल' उन्हीं 'राम' नामधारी

नरेन्द्र की आज्ञा से बनाया गया हो, पर प्रारंभ में इसका कुछ संकेत न होने से इसे सत्य नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

यहाँ प्रस्तुत 'रामनरेंद्र' के विषय मे कुछ विचार कर लेना असङ्गत न होगा। निम्न-लिखित ग्रन्थकारो ने इस पर जो प्रकाश डाला है, वह इस प्रकार है—

(१) मिश्रबंधु-विनोद (पत्र ५६८) मे न० ६७२ पर 'राम राय'-नामक कवि का परिचय लिखा है, जिसका कविता-काल स० १७६० लिखा है, साथ मे यह भी लिखा है कि यह कहीं के राजा थे।

(२) हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का सक्षिप्त विवरण (ना० प्र० सभा) प्रथम भाग मे (पत्र २५) कुमारमणि का जन्म संवत् १८०३ तथा स्थान गोकुल, एव वल्लभ भट्ट का पुत्र और दतिया-नरेश का आश्रित लिखा है। इसमे उक्त सं० १८०३ गलत है, और वल्लभ भट्ट के स्थान पर हरिवल्लभ चाहिये। दतिया-नरेश के आश्रय का उल्लेख होने से सभव है रामराय, रामसिंह नामक कोई तत्कालीन वहाँ के राजा हुए हो।

(३) नं० २ की पुस्तक (पत्र ३७) मे एक खण्डन कवि का परिचय दिया गया है, जिसका स० १७८१—१८१६ के लगभग माना है, और उन्हे राजा रामचंद्र दतिया-नरेश के समकालीन बतलाया है।

उपस्थित उद्धरणों से यह निश्चित होता है कि कवि कुमारमणि के समकालीन, हिन्दी-काव्य के प्रश्रयदाता ही नहीं

प्रत्युत स्वयं कवि रामराय अथवा रामचद्र, किंवा रामसिंह नामक दतिया के राजा थे, संभवत यही कवि कमारमणि के आश्रयदाता रहे हों। दतिया राज्य के आश्रय की पुष्टि इस से और भी अधिक होती है कि– सम्प्रति भी कवि कमार-मणि के वंशज, इस लेखक के पितृचरण पूज्य बालकृष्ण शास्त्रीजी को भी दतिया से राजगुरु का सम्मान प्राप्त है। इसी प्रकार पूर्व मे भी (सन् १८५७ के गदर के समय) वान पुर के उजड़ जाने पर कमारमणि के वंशज पं० विहारीलाल शास्त्रीजी * कवि भी दतिया मे आकर बसे थे, और उन्हें राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। संभव है, वशपरम्परा द्वारा इस राज-गुरु के सम्बन्ध और आश्रय को प्रचलित कराने का श्रेय पं० कुमारमणि को हो। अस्तु यह निःसन्दिग्ध है कि कवि कुमारमणि रामनरेन्द्र के द्वारा सम्मानित हुए थे, अथवा वह उनके आश्रित होकर रहे हों। कुमारमणि के पूर्वपुरुषो को सागर जिले मे धर्मसी, केनरा आदि ग्राम जयसिंह देव राजा द्वारा प्रदान किये गये थे। जिनमेसे प्रथम ग्राम अब भी उनके वशजो के पास माफीरूप मे है। सागर जिला और बुन्देलखंड ये दोनो परस्पर संयुक्त है—अतः स्थायी निवास-स्थान सागर जिले का गढ-पहरा ग्राम होने पर भी कवि कुमारमणि का आवागमन बुन्देलखंड मे चालू रहा होगा, और इसी कारण उन्हे वहाँ की रियासतों मे राज्य-सन्मान समय-समय पर प्राप्त होता होगा।

* देखो—'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि'

इसी प्रसंग मे दतिया रियासत मे उनकी आवभगत हुई हो, और वहाँ के काव्य-कला-प्रेमी रामनरेंद्र ने उन्हें सम्मानित किया हो, और इसी लिये कवि ने इस सम्मान-गौरव मे प्रभावित होकर यत्र-तत्र उदाहरणो मे उनके यश का वर्णन किया होगा।

इसके अतिरिक्त कुमारमणि को अन्यत्र कहाँ-कहाँ राज्य सम्मान प्राप्त हुआ, हम कुछ नहीं कह सकते, क्योकि तद्विषयक कोई प्रमाण उपस्थित नहीं होता। हाँ, स्वर्गवासी मेरे पितृव्यचरण पं० श्रीकृष्ण शास्त्रीजी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ था कि कविवर कुमारमणि को 'झारखंड' में कुछ भूमि प्राप्त हुई थी। इस 'झारखड' का नामोल्लेख रसिक रसाल मे भी एक स्थल पर हुआ है।

कुछ भी हो, पं० कुमारमणिशास्त्री कुछ तो अपनी पौराणिक आजीविका से, कुछ अपने पाण्डित्य से एवं कुछ अपनी वंशपरम्परा, प्राप्त भूमि की आजीविका से अपना योगक्षेम चलाने म परमुखापेक्षी नहीं थे, इस कारण यदि उन्हे किसी नृपति-विशेष के आश्रय की आवश्यकता न भी हुई हो, तो कोई आश्चर्य नही है। उन्होने अपना काव्यमय जीवन बनाया था, और उसी की स्थायी स्थापना कर वह अपने नश्वर देह को छोड़ते हुए भी अजर अमर बन गये थे। वास्तव में एक संस्कृत-श्लोक के अनुसार कवियो का जरा-मरण-रहित यश-काय ही उनका वास्तविक स्वरूप है।

कुमारमणि ने अपना पाञ्चभौतिक देह कब छोड़ा, इसका निश्चित काल ज्ञात नहीं हुआ है। हाँ, स० १७७६ मे उनकी हस्तलिखित, पूर्व वर्णित पुस्तक से उनकी इस समय तक की स्थिति मे कोई सन्देह नहीं रहता।

कवि के समकालीन और पूर्ववर्ती कुछ कवि

कविकुमारमणि-कृत 'रसिक रसाल' ग्रन्थ के दोष-प्रकरण मे कुछ हिन्दी के कवियों के उदाहरण दिये गये हैं, जिससे मानना पड़ेगा कि वे कवि कुमारमणि के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती थे। यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि रसिक रसाल की पूर्ति स० १७७६ मे हुई है। इस आधार पर जिन कवियो के नाम नीचे लिखे जाते हैं, उनका समय (कविता-काल) इसके पूर्व ही सिद्ध होगा, अधिक से अधिक ग्रन्थ-रचना के समय तक उनकी प्रसिद्धि मानी जा सकती है। निम्नलिखित कवियों के समय-निर्धार के विषय मे हम मिश्रबंधु-विनोद के आधार पर उनका समय देते हैं—जिसमे कुछ कवियों का समय 'रसिक रसाल' की पूर्ति के बाद आता है। हम कह नहीं सकते कि मिश्र-बधुओ का दिया हुआ समय ठीक है अथवा नहीं। संभव है, एक ही नामधारी दो कवि हुए हो, जिनमे एक का उदाहरण 'रसिक रसाल' मे दिया गया हो और दूसरे का पता विनोदकार को लगा हो, परन्तु जहाँ तक निश्चित है 'रसिक रसाल' में नामोल्लेख होने से 'विनोद' के प्रदत्त समय का सुधार होना चाहिये। उक्त कवियों की नामावली इस प्रकार है—

(१) 'जगदीश—रचना-काल स० १८६२ ❀

(२) 'केशवदास'—जन्मकाल सं० १६१८

(३) 'वेनी'—प्रथम सं० १६६० के लगभग, द्वितीय का र सं० १७५५

(४ 'गग'—प्रथम सं० १५६० से १६१०, द्वि० १६२७

(५) 'सविता'—जन्म काल १८०३ कविता काल सं० १-३० (झारखड के कृष्ण साहि के यहाँ)

(६) 'ब्रह्म'—स० १८०३

(७) मुरलीधर'—ज० स० १७४० क० काल १७३०

(८) 'कासीराम'—ज० सं० १७१८ क० काल १७४०

(९) 'गदाधर'—सं० १७७५ के लगभग

(१०) 'मतिराम'—स० १७१६ के लगभग

(११) कसवराय'—प्रथम बघेलखंडी सं० १७५४, द्वि० बुन्देलखण्डी सं० १७५३ (छत्रसाल के)

(१२) 'मनिकंठ'—सं० १७५४ क पूर्व।

प्रस्तुत कवियो के समय का वास्तविक निर्णय करना इतिहासज्ञ साहित्य-विद्वानों का कर्तव्य है। जहाँ तक इनके समय की रूप-रेखा मिली है उसे उद्धृत करने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है।

जिस प्रकार कुमारमणि के 'रसिक रसाल' से हिंदी कवियों

❀ रेखाङ्कित संवत् पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

की पृष्ठ-लिखित नामावली ली गई है, उसी प्रकार उनके 'रसिक-रंजन' नामक आर्यासप्तशती-संग्रह से संस्कृत के निम्न-लिखित कवियों का हमे पता लगता है, और उनकी सुमधुर काव्य-सुधा चखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दुर्भाग्य यह है कि अभी तक एतन्नामधारी कवियों का न तो साहित्य-जगत् को पता ही था, और न उनके ग्रंथों की उपलब्धि ही। 'रसिक-रंजन' मे निम्न-लिखित कवियो की आर्याओ का संग्रह स्थान-स्थान पर किया गया है, और उसके साथ ही साथ एक दो आर्यासप्तशतियों का भी पता लगता है—जिनकी यथा-स्थान संसूचना की गई है। शोक इस बात का है कि उक्त ग्रंथो का या कवियो के काव्यसंग्रहों का कुछ भी पता अभी तक नहीं लगा है। अस्तु। नामावली इस प्रकार है*—

(१) कुमारमणि—स्वतन्त्र आर्यासप्तशती, जिसे कवि ने "मदीयसप्तशत्याः" से सम्बोधित किया है।

(२) गोवर्धनाचार्य—सप्तशती उपलब्ध होती है।

(३) चिन्तामणि दीक्षित—कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता।

(४) मातुल जनार्दन— ,, ,,

(५) जयगोविन्द वाजपेयी—इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं—(१) कवि-कल्पद्रुम (संस्कृत हिन्दी),

* जीवनचरित्र के लिये देखो 'आन्ध्रजातीय संस्कृत कवि' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ

(२) कविसर्वस्व (हिन्दी),

(३) रसकौस्तुभ (,,) ।

(६) बालकृष्ण भट्ट—कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता ।

(७) बाणभट्ट—प्रसिद्ध है ।

(८) मधुसूदन कवि पण्डित—कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता ।

(९) वासुदेव—अनुजसप्तशती का नाम मिलता है ।

(१०) लीलावतीकार—प्रसिद्ध है ।

(११) प्राञ्च० (केचन) अप्रसिद्ध है ।

(१२) नव्य (कश्चित्) ,, ,,

(१३) कश्चित् (अज्ञात) ,, ,,

उपरिलिखित सभी कवि आन्ध्रजातीय थे, यह भी ज्ञात होता है ।

कुमारमणि और पद्माकर

कवि कुमारमणि के जीवनचरित्र मे लिखा जा चुका है कि इनके शिष्य क्षेमनिधि थे, जो कवि पद्माकर के पितृव्य थे, अत संभव है, पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट ने भी कुमारमणि के समीप हिन्दी-साहित्य-शास्त्र का अध्ययन किया हो, और इसी कारण पद्माकर को भी कुमारमणि के निर्दिष्ट पथ का अनुगामी बनना पड़ा हो । जगद्विनोद और पद्माभरण की रचना के समय पद्माकर के ध्यान-पथ में कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' ग्रन्थ होगा, अथवा उन्होंने उसकी अख्याति

से लाभ उठाया होगा। 'रसिक-रसाल' काव्यप्रकाश का प्रायः अनुवाद है। अतः यह भी संभव है कि पद्माकर का पाठ्य ग्रन्थ ही वह रहा हो, पर यह निःसंदिग्ध है कि पद्माकर की कविता पर कुमारमणि के काव्य की छाया पड़ी है और अच्छी प्रकार पड़ी है—फिर चाहे वह इच्छाकृत हो अथवा अनिच्छा-कृत।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये कुछ थोड़े से उदाहरणों का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। पाठक देखें कि पद्माकर ने कुमारमणि के काव्य का किस प्रकार अपहरण किया है—

'रसिक-रसाल'—

दोऊ ढिग है बाल इक, आँखिन नाँखि गुलाल।
अक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल॥ ४ उ० ६७॥

'जगद्विनोद'—

मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै-चितै॥ ७४॥

उक्त दोनो पद्य 'ज्येष्ठा-कनिष्ठा' नायिका के उदाहरण-स्वरूप हैं, जिनमे कवियों ने अपने कल्पना-कौशल का परिचय दिया है। यद्यपि दोनों ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा के लक्षण पृथक् पृथक् लिखे हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं, जिसकी गहराई मे हमे यहाँ उतरने की आवश्यकता नहीं है। हमें तो केवल यह कहना है कि

पद्माकर ने उक्त भाव मे कुछ दूसरा चोला चढ़ाकर भावापहरण किया है। पद्माकर के पक्षपाती कवि यद्यपि उनके "सुदृग-मिचावनी क ख्याल" मे "नैसुक नवाई ग्रीवा" इत्यादि के कारण पद्माकर की वाहवाही के "औचक अचूक" पुल बाँध सकते हैं, पर 'रसिक-रसाल' मे "आँखिन नाखि गुलाल" की सूक्ष्म विलक्षण है और नायक की तात्कालिक कृति का उदाहरण है, जिसमे उसे अपेक्षित समय प्राप्त हो जाता है। पद्माकर ने आधे कवित्त मे उसकी भूमिका बाँधी है और कुमारमणि ने उसे दोहे के भीतर सुन्दर और अनुपम ढंग से कह डाला है। इसे हम भावापहरण कह सकते हैं।

कुछ पाठक इसे बलात्कार की धाँधली कहकर पद्माकर के लिये न्याय माँग सकते है, पर हम भी अपने कथन की पुष्टि करे विना नहीं रह सकते। लीजिये द्वितीय उदाहरण—

'रसिक-रसाल'—

खौर को राग छुट्यौ कुच को, मिटि गौ
अधरारस देख्यौ प्रकासहि ;
अंजन गौ दृग कजन ते तनु ,
कपत तेरो रुमंच हुलासहि।
नेकु हितू जन को हित चीन्हौं न ,
कीन्हौं अरी ! मन मेरो निरासहि ;
बावरी ! बावरी न्हान गई कै ,
वहाँ न गई उहि पीव के पासहि ॥ १ उ० ११ ॥

'जगद्विनोद'—

धाइ गई केसरि कपोल कुच गोलन की,
पीक-लीक अधर-अमोलनि लगाई है,
कहे 'पदमाकर' त्यौं नैनहू निरंजन में
तजत न कंप देह पुलकनि छाई है।
बाद मति ठानैं झूठवादिनि भई री अब,
दूतिपना छोड़ि धूतपन में सुहाई है,
आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू,
पापी लौं गई न कहूँ वापी न्हाइ आई है ॥ १२८ ॥

उक्त सवैया और कवित्त मे क्रमश: अर्थ का मिलान करते-करते अर्धांश तक भावानुवाद का परिज्ञान कर सकते हैं। आगे चलकर कुछ अभिप्राय बदल गया है, पर अन्तिम चरणों मे केवल शब्दो का हेरफेर ही रह जाता है। क्या यह भावापहरण नहीं है? जगद्विनोद के उक्त पद्य पर क्या रसिक-रसाल के उक्त सवैया की छाया स्पष्ट नही झलकती? कौन इसे अस्वीकार कर सकता है? कहना पड़ेगा, पद्माकर ने कुमारमणि की सूझ से काम लेकर अपना काम बनाया है।

हाँ! स्मरण होता है, कई सहृदय व्यक्ति इसे अनुचित पक्षपात कह सकते हैं और तदर्थ एक संस्कृत का श्लोक उपस्थित कर सकते हैं, जिसके यह दोनो पद्य अनुवाद-स्वरूप हैं। वह श्लोक इस प्रकार है—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः;

मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।

हमे इस कथन के मानने मे कोई विप्रत्तिपत्ति नहीं है, और उसका कारण स्पष्ट है कि उक्त दोनो कवियों की यह सूक्ष मौलिक नहीं है। परन्तु कुमारमणि ने इसे ध्वनि के उदाहरण मे लिखा है—जैसा कि 'रसिक-रसाल' के लिये काव्यप्रकाश का अनुवाद होने के कारण आवश्यक था, पर पद्माकर ने इसे 'अन्यसुरतिदुःखिता' नायिका के उदाहरण में लिखा है, और उसे 'रसिक-रसाल' से लेकर परिवर्तित रूप मे ला रक्खा है।

पद्माकर का कवित्त यद्यपि श्लोक का पूरा अनुवाद कहा जा सकता है और इससे उनकी पीठ ठोकी जा सकती है, परन्तु हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि ध्वनिप्रकरण का उदाहरण होने से कुमारमणि का उक्त सवैया पद्माकर के कवित्त और मूल श्लोक दोनों से ही बढ-चढ गया है। "मिथ्यावादिनि! दूति बान्धवजनस्याज्ञात पीडागमे" इस वाक्य और उसके अनुवाद—"बाद मति ठाने झूठवादिनि भई री अब, दूतपनो छोडि धूतपन मे सुहाई है" की अपेक्षा "नैकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हो अरी मन मेरो निरासहिं" इस कुमारमणि के पद्यांश मे कितनी मधुरता और ध्वनि है, जो काव्य को अतिशय चमत्कृत कर रही है। अस्तु। 'तुष्यतु०' न्याय से इस विवाद को छोड़कर भावपहरण

के दो उदाहरण और उपस्थित किये जाते हैं, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है—

'रसिक-रसाल'—

रूप सौं विचित्र कान्ह मित्र को विलोकि चित्र
चित्रित भई न चित्र पूतरी सुभाई है ॥ ३उ०२६ ॥

'जगद्विनोद'—

मोहन मित्र को चित्र लखें
भई चित्र हा सी तो विचित्र कहा है ॥६२७॥

पद्माकर के इस शब्द और भाव के अपहरण को कहाँ तक कोई छिपा सकता है—नीचे के पद्य के शब्द उच्चैर्घोष से अपने स्थान का परिचय दे रहे हैं। कवि ने कुछ शब्दों मे परिवर्तन कर किस प्रकार 'रसिक-रसाल' के माल को उदर-सात् कर लिया है। उक्त उदाहरण 'चित्र-दर्शन' के हैं। अत कहना पड़ेगा कि पद्माकर ने नि संकोच होकर इस सुदर भाव-पूर्ण 'कान्ह-चित्र' को चुराया है—इसमे वह अपने लोभ का सवरण नहीं कर सके है।

प्रस्तुत भावापहरण प्रकरण में एक उदाहरण और दिया जा कर यह विषय समाप्त किया जायगा। आइये और देखिये—

'रसिक-रसाल'—

फूल बहार के भार भरी
इक डार है 'नंद-कुमार' नवाई ॥ ५ उ० १८ ॥

'जगद्विनोद'—

निज निज मन के चुनि सबै फूल लेहु इक बार ;
यहि कहि कान्ह कदंब की हरषि हिलाई डार ॥२१०॥

दिनदहाडे की इस चोरी के लिये और क्या प्रमाण चाहिये ? वह उदाहरण स्वय अपना प्रमाण है।

कदंब की डाल पर चढ़कर अपनी प्रियतमाओं को पक्षपात-हीन होकर प्रसन्न करने के लिये नायक की दक्षिणता की सुन्दर भावोत्पत्ति कुमारमणि के मस्तिष्क से ही हो सकती है, उसे चुराकर पद्माकर ने अपने लिये धन्यवाद का गट्ठर बाँधा है। पर है यह 'पराया माल' ही। आखिर बरामद हो ही गया है।

इन्हीं कारणों से कहना पडता है कि पद्माकर ने कुमारमणि के सुन्दर भावों का अपहरण किया है और उससे ख्याति प्राप्त की है।

विज्ञ जनों के सम्मुख कुछ शब्दापहरण के निदर्शन रखकर हम यह और बतलाना चाहते हैं कि पद्माकर ने कुमारमणि के शब्दों को यथावत् अपने काव्य मे स्थान ही नहीं दिया है, प्रत्युत उनके द्वारा अपने छंदों की पूर्ति भी की है। प्रथम एक उदाहरण अर्थापहरण का दे देना भी अप्रासंगिक न होगा।

'रसिक-रसाल'—

रचि बनाउ जो प्रेमबस तिय पहुँचै पिय पास।
निज पास पिय को बुलावै सोऊ अभिसारिका कहत हैं।

'जगद्विनोद'—

बोलि पठावै पियहि कै पिय पै आपुहि जाय ॥ २२७ ॥

'रसिक-रसाल' के उक्त पद्य और गद्यभाग को मिलाकर पद्माकर ने अपने दोहे का कलेवर बनाया है, जो छद के आवरण से आवृत होने पर भी अपनी वर्णसंकरता को छिपा नहीं सका है। अस्तु। अब शब्दापहरण की झाँकी देखिये—

'नायक' के उदाहरण मे पद्माकर का यह कवित्त प्रसिद्ध है—

ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार

नन्द को कन्हाई सो सुनन्द को कन्हाई है ॥ जग० २८० ॥

क्या इस पद्य के रेखांकित पद का अनुमान पाठक कर सकते हैं कि वह कहाँ का है ? क्या यह पद्माकर का मौलिक शब्द है ? नहीं। कुमारमणि 'रसिक रसाल' मे नायक के उदाहरण मे ही इसे इस प्रकार लिख चुके हैं—

कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर-ठसक को ॥ ४ उल्लास ६ ॥

'ठाकुर-ठसक' के नगीने को चुराकर पद्माकर ने अपने कवित्त के आभरण मे यद्यपि फिर बैठा दिया है और ठकार के शब्दालंकार मे छिपाकर उसे अपनाने की कोशिश की है, पर 'रसिक-रसाल' के अवलोकन से प्रकट हो जाता है कि यह 'ठाकुर-ठसक' का संयोग कुमारमणि-कृत है।

अब आगे चलकर एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

'रसिक-रसाल'—

है उपमेय परसपरहिं सोई है उपमान ॥ ८ उ० १२ ॥

'पद्माभरण'—

उपमेयोपम परसपर उपमेयहु उपमान ॥ २७ ॥

दोनों के रेखांकित पदों पर ध्यान देने से विदित हो जायगा कि रसिक-रसाल' के लक्षण में ही कुछ परिवर्तन कर 'पद्माभरण' का उक्त लक्षण बना लिया गया है।

एक अन्य उदाहरण दिया जाता है, जिसमें एक शब्द ही क्या दोहा का अधांश तक उड़ा लिया गया है—

'रसिक-रसाल'—

रतिरत सो पिय संग सो जाके कछु परतीति।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत कविता रीति ॥ ९ उ० ९३ ॥

'जगद्विनोद' —

पति की कछु परतीति उर धरै नवोढा नारि।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत विबुध विचारि ॥ ३८ ॥

'कछु परतीति' से लेकर 'बरनत' तक पद्यांश पद्माकर ने उड़ा लिया है। इस चोरी के समय उन्हें पुनरुक्ति का भी ध्यान नहीं रहा है—'नवोढा नारि' और 'नवोढ तिय' यह दोनों शब्द एक ही पद्य में दो बार आ गये है। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों के सम्यगालोचन करने के बाद कौन साहित्यज्ञ समालोचक इससे नकार कर सकता है कि पद्माकर के काव्य पर कुमारमणि की छाया नहीं पड़ी है ?

उक्त उदाहरणों के अर्थ, भाव और शब्द सभी इसका संकेत करते हैं कि पद्माकर की सूझ या वर्णन-शैली स्वतंत्र न

होकर परतंत्र है—वह मौलिक नहीं है, कहीं से लाकर रक्खी गई है। गवेषणा-पूर्ण दोनो कवियो के काव्यावलोकन से और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर उससे ग्रन्थ के कलेवर बढ़ जाने का भय है, और परीक्षा के लिये एक दो दोने ही पर्याप्त है। पद्माकर के ऐसा करने अथवा उनसे ऐसा हो जाने का भी कारण है, वह है, उनके पाठ्य ग्रंथ मे रसिक-रसाल की सभवता। कुमारमणि ने साहित्य जगत् मे उतनी अधिक प्रसिद्ध नहीं पाई, जितनी पद्माकर नें। वर्तमानकालीन साहित्य-पारखियो ने तो कुमारमणि का कोई स्थान साहित्य मे निश्चित ही नहीं किया है, पर पद्माकर तो इस विषय मे काफी प्रख्यात हो चुके है, और वह भी अपने देशाटन, राजसम्मान तथा काव्यात्मक आजीविका से। 'रसिक-रसाल' की अनुपलब्धि अथच विशेष प्रख्याति का अभाव भी कुमारमणि को विस्मृति के पट मे छिपाये रहा है। इन सब कारणो से पद्माकर के 'करतब' छिपे रह गये हैं और कुमारमणि को साहित्य मे उचित स्थान न देने का अन्याय हो गया है।

कुमारमणि-कृत ग्रन्थ

(१) 'रसिक-रंजन'

कुमारमणि शास्त्री का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ रसिक-रंजन' है, जिसमे साहित्य के २१ विषयों पर सुन्दर, सरस संस्कृत-आर्याओं का संग्रह है। इसे सप्तशती शब्द से स्वयं

कवि ने सम्बोधित किया है। खेद है कि उक्त ग्रन्थ मध्य एवं अन्त भाग मे कुछ अपूर्ण उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के विषय-निदर्शनार्थ कवि स्वयं इस प्रकार लिखता है—

"काव्यं कृष्णस्तुतिरथ संयोगवियोगनायिकाभेदा ।
उद्दीपनरसचेष्टाशिक्षोपालंभनं प्रेम ॥ १३ ॥
साप-न्यमानमगं हास्य ग्रामे गुणास्तथान्योक्तिः ।
सदसज्जनदुःखनयाश्चित्रमिहोत्रैकविंशतिप्रमिके" ॥ १४ ॥

अर्थात् 'रसिक-रंजन' मे काव्य, कृष्णस्तुति, संयोग, वियोग, नायिका-भेद, उद्दीपन, रसचेष्टा, शिक्षा, उपालंभ, प्रेम, सापत्न्य, मान, अङ्ग, हास्य, ग्रामगुन, अन्योक्ति, सज्जन, असज्जन, दुःख, नय (नीति) तथा चित्रकाव्य इन २१ विषयों पर आर्याओं का संग्रह है।

ग्रंथ मे कुमारमणि-रचित कितनी ही आर्याएँ हैं, जिन्हें कवि ने अपनी स्वतंत्र सप्तशती से उद्धृत किया है। इसी प्रकार अन्य कवियों की आर्याओं का इतना सुन्दर संग्रह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। हम यह प्रथम कह आये हैं कि इस आर्या-संग्रह से २३ प्राचीन आर्या सप्तशतियों के साथ ही अन्य अज्ञात कवियो की कविता का भी पता लगता है, जिसमे एक ही श्रीवत्सवंश की तीन सप्तशतियों की नामावली तो इस प्रकार है—(१) मधुसूदन-सप्तशती, (२) कुमारसप्तशती, (३) वासुदेवसप्तशती। मधुसूदनजी को 'कविपण्डित' को उपाधि थी, और यह कवि

के पूर्वज थे। इनकी आर्याएँ इतनी ओज-पूर्ण एवं सुन्दर हैं, जिनके लिये गर्व किया जा सकता है।

प्रस्तुत विषय मे इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सम्प्रति जो गौरव आर्याओ के निर्माण के लिये गोवर्धनाचार्य को दिया जा रहा है, उससे अधिक नहीं, तो वही गौरव प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशित होने पर उसके रचयिता को भी दिया जा सकता है। हम विस्तार-भय से उन आर्याओ के कुछ उदाहरण यहाँ नहीं देते, और उनका यहाँ लिखना भी एक प्रकार से "गगा की गैल मे मदार के गीत" वाली कहावत को चरितार्थ करना है।

आर्यासंग्रह 'रसिक-रजन' मे जहाँ तक मेरा विश्वास और ध्यान तथा निश्चय है, आंध्रजातीय संस्कृत - कवियो की ही आर्याओं का संग्रह है। इस विषय का स्पष्टीकरण मैंने "आंध्रजातीय संस्कृत-कवि" नामक ग्रंथ में कवियो का परिचय लिखते समय किया है—जो अभी तैयार किया जा रहा है, अतएव अप्रकाशित है।

प्रस्तुत 'रसिक-रंजन' की पूर्ति सं० १७६५ मे हुई थी। यह ग्रंथ सौभाग्य से कुमारमणि के स्वहस्त से लिखा हुआ ही मेरे परंपराऽऽगत पुस्तकालय मे उपलब्ध हुआ है।

(२) 'कुमार-सप्तशती'

कुमारमणि की रचित स्वतंत्र आर्यासप्तशती का नामोल्लेख हमे रसिकरंजन मे मिलता है। कवि ने अपनी आर्याओं को

लिखते समय "मदीया" "मम" "मदीयसप्तशत्या" इन शब्दों से उनका उद्धरण दिया है, अतः कवि की एक स्वतंत्र 'आर्या-सप्तशती' अवश्य ही होना चाहिये—जो अभी तक अप्राप्त है। यह सप्तशती—'रसिक-रंजन' से प्रथम बनाई गई थी। और इसी कारण इसका उसमे उल्लेख पाया जाता है। 'रसिक-रंजन' में उद्धृत कुमारमणि की आर्याओं से इस ग्रंथ की महत्ता, मधुरता एवं गंभीरता का सहज ही परिचय मिल जाता है। यदि यह ग्रंथ प्राप्त होता तो इसे गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती की प्रतिद्वंद्विता मे अवश्य स्थान मिलता।

(३) 'रसिक-रसाल'

कवि कुमारमणि की अंतिम उपलब्ध किंतु सर्वप्रथम भाषा-काव्य-रचना का नाम 'रसिक-रसाल' है। इसकी पूर्ति सं० १७७६ में हुई है। ग्रंथकार ने इसके विषय मे इस प्रकार लिखा है—

काव्य - प्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल,
पंडित सुकवि 'कुमारमनि' कीन्हौ रसिक-रसाल।

प्रस्तुत ग्रंथ के परिचयार्थ मै कुछ भी न लिखकर पाठकों का ध्यान अग्रिम लेख पर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिसे मेरे आदरणीय मित्र पं० आशुकरणजी गोस्वामी ने 'रसिक-रसाल' के लिये लिखा है। प्रस्तुत लेख विद्वतापूर्ण, गवेषणामय एवं बहुत कुछ वास्तविकता को लिये हुए है। कहना पड़ेगा कि मेरे मित्रवर ने इस विषय में अच्छा श्रम उठाया है और

काफी बुद्धि-वैशद्य से कार्य लिया है। उक्त मित्र मेरे सजातीय बन्धु, हिन्दू-विश्वविद्यालय के स्नातक, एम्० ए० उपाधिधारी हैं। आपने अँग्रेजी, हिन्दी एवं संस्कृत में एम्० ए० किया है—सम्प्रति आप बीकानेर स्टेट की ओर से गगानगर मे सुपरिन्टेन्डेन्ट-पद पर कार्य कर रहे हैं। आपने काव्य-साहित्य का अच्छा परिशीलन किया है। 'रसिक-रसाल' के लिये इतना लम्बा-चोड़ा एवं गंभीर आलोचनात्मक परिचय लिखने का कष्ट आपने केवल मुझ अकिंचित्कर मित्र की एक बार की सूचना पर ही उठा लिया था, आपके आगत पत्रो से मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आप इसे जिस उत्साह से जिस पैमाने पर लिखना चाहते थे, समयाभाव एवं साहाय्याभाव से उसे वैसा नहीं लिख पाये हैं। इस साहाय्याभाव मे आपने जिन साहित्यिक महारथियों की परोत्कर्षा, सहिष्णुता का दिग्दर्शन मुझे कराया था, वह एक स्मरणीय होते हुए भी अप्रकाशनीय है। इस पत्र-व्यवहार से मुझे इस वस्तुस्थिति को मानने के लिये विवश होना पड़ा है कि सम्प्रति हमारे हिन्दी-साहित्य के वातावरण मे वह सुखद समय नहीं आया है, जिसमे पारस्परिक गुण-ग्राहकता, सौजन्य एवं अनसूया से कार्य किया जाता हो। जो प्रसिद्ध साहित्य-प्रकाशक हैं, और जिन्हे साहित्यिक महारथी माना जाता है, वे स्वकीय प्रसिद्धि के आगे किसी को कुछ भी नहीं समझते, वे नहीं चाहते कि कोई व्यक्ति

हमारा समकक्ष बन बैठे। यहाँ मुझे एक श्लोक याद आ गया है, जो हिन्दी-साहित्य के लिये वर्तमान काल मे पूर्ण चरितार्थ प्रतीत होता है—

विद्वांसो मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मयदूषिता।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥

अस्तु। अप्रासङ्गिक इस कथानक को अधिक न बढ़ाकर मैं स्वकीय उक्त मित्र को धन्यवाद न देकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पाठक देखें कि मेरे उक्त मित्र 'रसिक-रसाल' के प्रति क्या कहते हैं ।

'रसिक-रसाल'

(लेखक पं० आशुकरणजी गोस्वामी एम्०ए०)

दी-साहित्य मे रीति-ग्रंथों की भरमार है। यद्यपि उनका आधार संस्कृत-साहित्य के रीति ग्रथ ही हैं, परतु संख्या की दृष्टि से हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथ सस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रथो से कहीं आगे बढ़ गए हैं। काव्य के अंगों का, काव्य के रूप का, उसके अलंकार, गुण, दोष आदि का जैसा विशद शास्त्रीय विवेचन संस्कृत के ग्रंथों में मिलता है, उसकी छाया तक हिंदी के ग्रंथो में नहीं मिलती। मम्मट, भोज, दंडि, आनंदवर्धन, विश्वनाथ, जगन्नाथ कविराज आदि के ग्रंथों में जो वैज्ञानिक तत्त्व-विवेचन, शास्त्रार्थ, सिद्धांत-स्थापन, खंडन-मंडन और तत्त्व-निदर्शन दिखाई पड़ता है, वहाँ तक हिंदी के ग्रंथों के निर्माताओं की पहुँच कहाँ? देखने से इसके कारण का पता चलेगा कि संस्कृत के इस विषय के ग्रंथ लिखनेवाले आचार्य थे, और हिंदी में ऐसे ग्रंथ लिखनेवाले अधिकतर रसिक कवि। सस्कृत में ऐसे ग्रंथ लिखनेवालो का

ध्येय तात्त्विक विवेचन व सिद्धांत-स्थापन करना था, पर हिंदी में ऐसे ग्रंथ लिखनेवालों का ध्येय अपनी कवित्व-शक्ति तथा रसिकता दिखलाना था। संस्कृत मे तो बहुत-से आचार्य बड़े ही भावुक और उच्च कोटि के कवि भी थे, परंतु हिंदी म ऐसे कवि आचार्य-कोटि को पहुँचे हो, इसमे बहुत संदेह है। कहा जा सकता है कि इस कमी के कारणो मे, हिंदी-साहित्य की प्रारंभिक अवस्था, आश्रयदाताओं की रुचि की भिन्नता, तात्कालिक युग का वातावरण, हिंदी की साहित्यिक भाषा के स्थिर रूप का अभाव आदि-आदि थे, फिर भी, कारण चाहे जो हो, निष्पक्ष रूप से यह मानना पडेगा कि हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथ लिखनेवालो मे अधिकांश आचार्यता का प्राय अभाव ही था। इसका एक मोटा सा सबूत यह है कि तद्विषयक ग्रंथों मे जो लक्षण दिए हैं, वे बहुधा क्लिष्ट, अपूर्ण और ग़लत भी हैं, परंतु उन लक्षणों के जो उदाहरण दिए गये हैं, वे बहुधा बहुत सरस, भावपूर्ण एवं मंजे हुए हैं। कहीं-कहीं तो वे ऐसे हृदयग्राही है कि संस्कृत-ग्रंथो मे वैसे उदाहरण कम पाये जाते हैं।

हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों मे शास्त्रीय दृष्टि से यदि मौलिकता कहीं दिखाई पड़ेगी, तो उदाहरणों मे ही, लक्षणो व वार्त्ताओ मे नहीं। जिसका कारण पहले बताया ही जा चुका है।

हम हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों के स्थूल रूप से तीन विभाग कर सकते हैं—

१. जिनमे काव्य के सारे अंगों पर प्रकाश डाला गया है,
२. जिनमे रस-भेद व भाव-भेद का ही वर्णन है,
३ जिनमे केवल 'अलकार' का विषय ही दिया हुआ है।

पहली श्रेणी मे चिंतामणि त्रिपाठी का 'कविकुलकल्पतरु', कुलपति मिश्र का 'रसरहस्य', देव का 'शब्दरसायन', कुमारमणि का 'रसिक रसाल', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय', सोमनाथ का 'रसपीयूषनिधि', रूपसाहि का 'रूप-विलास', रतनकवि का 'फतेहभूषण', जगतसिंह का 'साहित्य-सुधानिधि', प्रतापसाहि का 'काव्यविलास आदि ग्रंथ मुख्य है।

दूसरी श्रेणी मे मतिराम का 'रसराज', केशवदास की 'रसिक-प्रिया', सुखदेव मिश्र का 'रसार्णव', उदयनाथ कवींद्र का 'रसचंद्रोदय', गजन का 'कमरुद्दीनखाँ हुलास', भूपति का 'रस-रत्नाकर', सैयद ग़ुलामनबी का 'रसप्रबोध', करन कवि की 'साहित्य-चंद्रिका', देवकीनंदन का 'शृंगारचरित्र', थान का 'दलेल-प्रकाश', बेनीप्रवीन का 'नवरसतरंग', पद्माकर का 'जगद्विनोद', भौन का 'रसरत्नाकर', शिवनाथ का 'रसवृष्टि', ये मुख्य है।

तीसरी श्रेणी मे केशव की 'कविप्रिया', मतिराम का 'ललित ललाम', भूषण का 'शिवराज-भूषण', जसवंतसिंह का 'भाषा-भूषण' सूरतिमिश्र की 'अलकार-माला', श्रीपति की 'अलंकार-गंगा', ऋषिनाथ की 'अलंकार-मणिमंजरी,' रसिक-

सुमति का 'अलंकार-चंद्रोदय', भूपति का 'कंठाभरण', दत्त की 'लालित्यलता', दलपतिराय वंशीधर का 'अलंकार-रत्नाकर', रघुनाथ का 'रसिकमोहन', दूलह का 'कविकुल-कंठाभरण', शिव का 'अलकार-भूषण', गुमान का 'अलंकार-चद्रोदय', ब्रह्मदत्त का 'दीपप्रकाश', शभुनाथ का 'अलंकार-दीपक', वैरीसाल का 'भाषाभरण', रामसिह का 'अलकारदर्पण', चंदन का 'काव्याभरण', कलानिधि का 'अलंकार कलानिधि', देवकीनंदन का 'अवधूतभूषण', भान का 'नरेंद्रभूषण', बेनी का 'टिकैतराय-प्रकाश', भौन का 'शृंगाररत्नाकर', गुरुदीन का 'वाग्मनोहर', पद्माकर का 'पद्माभरण', रामसहायदास का 'वाणीभूषण', उत्तमचंद भंडारी का 'अलंकार-आशय', गदाधर-भट्ट का 'अलंकार चंद्रोदय' प्रतापसाहि का 'अलकार-चिंतामणि', लेखराज का गंगाभूषण', और लछिराम का 'राम-चंद्रभूषण' आदि मुख्य हैं।

नायिका-भेद और अलंकार पर लिखे गए ग्रंथो की संख्या बहुत बड़ी है, और दशांग-काव्य पर लिखे हुए ग्रंथों की बहुत थोड़ी। दशाग-काव्य पर जो ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमे चितामणि त्रिपाठी का 'कविकुल-कल्पतरु', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', कुलपति का 'रस-रहस्य', भिखारीदास का 'काव्य निर्णय' और कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' कविता तथा विवेचन शैली की दृष्टि से बहुत अच्छे है। इनमें कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' एवं भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' छप गया है।

दशांग-काव्य पर जो भी ग्रंथ लिखे गये हैं, उनमे किसी खास एक ही ग्रंथ का आश्रय नहीं लिया गया है। साधारण-तया काव्य लक्षण, उसके विभेद, शब्दशक्ति का विषय, काव्य के गुण दोषादि का विचार काव्यप्रकाश के आधार पर लिखा गया है, रस-भाव-भेद का प्रकरण साहित्यदर्पण, दशरूपक आदि के आधार पर और अलंकार का प्रकरण चंद्रालोक, कुवलयानंद के आधार पर।

कुमारमणि के 'रसिक-रसाल' मे काव्य के लक्षण, प्रयोजन, गुण-दोष, शब्द-शक्ति आदि का विचार काव्यप्रकाश के मतानुसार दिया गया है, रस भेद भाव-भेद, नायक नायिका-भेदादि साहित्यदर्पण दशरूपक के आधार पर, और अलंकार का विचार कुवलयानंद की शैली व आधार पर।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदी-साहित्य में नाटक का शास्त्रीय रूप कभी प्रकट ही नहीं हुआ, और इसीलिये उनमे नाट्यशास्त्र के प्रकरण का प्राय अभाव ही रहा है। रसिक-रसाल मे भी इसीलिये इस प्रकरण का कोई अध्याय नहीं है। आधुनिक युग मे नाटक की तरफ अवश्य कुछ लेखकों का ध्यान गया है, परंतु नाट्यशास्त्र पर अभी तक प्रामाणिक ग्रंथो का प्राय अभाव ही है। प्रस्तुत ग्रंथ रसिक-रसाल मे दश उल्लास हैं, और उनमें वर्णित विषय ये हैं—

१. त्रिविध काव्य-निरूपण

२. चतुर्विध व्यंग्यकथन
३ रसव्यंग्यनिरूपण
४. भावानुभावनिरूपण
५. आलंबन-उद्दीपननिरूपण
} उत्तम काव्यनिरूपण

६. मध्यम काव्यनिरूपण

७. चित्र-काव्यविचार
८. अर्थालंकारनिरूपण
} चित्र-काव्यनिरूपण

९. काव्य-गुण-कथन

१० काव्य-दोष

प्रथम उल्लास—काव्य-निरूपण

इसमे काव्य के प्रयोजन, हेतु और भेद बताए गए हैं। लक्षण और उदाहरण काव्यप्रकाश मे दिये हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवाद ही है* यथा—काव्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है—

अर्थ धर्म जस कामना लहियतु मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित में ब्रह्मानद सवाद॥

---

*प्रस्तुत रसिक रसाल ग्रथ काव्यप्रकाश का प्राय अनुवादरूप है ग्रथकर्ता स्वय इस बात को अपने शब्दो में इस प्रकार लिखता है, जिस पर लेखक ने प्राय ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया है। और, इसीलिये स्थान स्थान पर इसका उल्लेख किया है—

"काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल।
पंडित सुकवि कुमारमणि कीन्हौ रसिक-रसाल॥

—सपादक।

काव्यप्रकाश मे यही प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

काव्य यशसे ऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्य. परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे ॥

इन दोनों का विचार करने पर ज्ञात होगा कि काव्यप्रकाश के 'कान्ता सम्मिततया उपदेशयुजे' इस एक प्रयोजन को कुमारमणि ने छोड़ दिया है। काव्य का एक प्रयोजन यह भी निर्विवाद है कि वह मनुष्य को स्त्री की तरह मधुरालाप से उपदेश देता है। रसिकरसाल मे काव्य के इस प्रयोजन को स्थान न देकर एक बड़ी भारी कमी रख दी गई है।

इसके आगे ग्रंथ में काव्य की उत्पत्ति के साधन लिखे है। यथा—

शक्ति शास्त्र लौकिक सकल परवीनता समेत ।
कवि शिक्षा अभ्यास भनि कवित उपज को हेत ॥

इसी साधन को काव्यप्रकाश मे यो लिखा है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥

यानी दोनो ग्रंथो मे जो तीन कारण काव्योत्पत्ति के दिए हुए हैं—१. शक्ति, २ लोक और शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त की हुई निपुणता और ३. काव्य-मर्मज्ञ पुरुषो की शिक्षा के अनुसार अभ्यास करना—वे एक से हैं।

फिर काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

उपजत अद्भुत वाक्य जो शब्द-अर्थ-रमनीय ।
सोई कहियतु कवित है सुकवि-कर्म कमनीय ॥

यह लक्षण साहित्यदर्पण और रसगंगाधर के लक्षणों को मिलाकर बनाया हुआ है। साहित्यदर्पण में रसात्मक वाक्य को और रसगंगाधर मे रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा गया है।

आगे चलकर काव्य के भेद किए हैं, और इसमे भी काव्य-प्रकाश का अनुकरण किया गया है। काव्य के तीन भेद किए हैं। यथा—१ ध्वनि, २. अगुरुव्यङ्ग्य गुणीभूतव्यङ्ग्य और ३. चित्र। यही तीन भेद काव्यप्रकाश मे भी किए गए हैं। इनके लक्षण भी काव्यप्रकाश मे जो दिए गए हैं, वही रक्खे है, और उदाहरण भी काव्यप्रकाश मे उदाहरण स्वरूप दिए हुए पद्यों के अनुवाद हैं।

काव्यप्रकाश मे ध्वनि (उत्तम काव्य) का लक्षण यह दिया हुआ है—'इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्यध्वनिर्बुधै. कथितः।' इसी को रसिकरसाल मे यों दिया है—'वाच्य अरथ ते व्यंग जँह सुन्दर अधिक विशेष'।

काव्यप्रकाश मे इसी का उदाहरण 'नि शेषच्युतचन्दनम्' इत्यादि पद्य दिया है, और उसी का अनुवाद रसिक-रसाल में "खौर को राग छुट्यो" इत्यादि पद्य दिया है।

मध्यम काव्य (अगुरुव्यङ्ग्य) का लक्षण काव्यप्रकाश मे "अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्य' व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्" यह दिया

हुआ है, और इसी का अनुवाद "काव्य अरथ तें व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेष" रसिक रसाल में दिया हुआ है। इसका उदाहरण काव्यप्रकाश मे "ग्रामतरुणं तरुण्या" इत्यादि पद्य है, और रसिकरसाल मे इसी का अनुवाद "बैठी जहाँ गुरु नारि०" इत्यादि पद्य दिया है।

चित्रकाव्य का लक्षण रसिक-रसाल मे नहीं दिया है, परतु उसके जो दो भेद उदाहरण-रूप दिए हैं—शब्दचित्र और अर्थचित्र—उनमे काव्यप्रकाश का ही सिद्धान्त है।

द्वितीय उल्लास—चतुर्विध व्यंग्य कथन

काव्यप्रकाश के द्वितीय और तृतीय उल्लास मे शब्दार्थ-निरुपण और अर्थ-व्यञ्जकता का निर्णय किया गया है। उसी विषय को संक्षप मे रसिक-रसाल के इस उल्लास मे कहा गया है। यथा—शब्द की तीन शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना, व्यग्य के अभिधामूलक और लक्षणामूलक ये दोनो भेद व इनके भी अवान्तर भेद, आदि-आदि। इनके लक्षण-उदाहरणादि भी काव्यप्रकाश के आधार पर अथवा उसके अनुवाद हैं।

तृतीय-चतुर्थ-पंचम उल्लास—रसव्यंग, भावानुभाव और आलंबन-उदीपन-विभाव-निरूपण।

रसिक-रसाल के ये तीनो उल्लास अधिकतर साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद के आधार पर लिखे हुए हैं। लक्षण और

उदाहरण भी साहित्यदर्पण मे दिए हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवादमात्र से ही है। कहीं-कहीं काव्यप्रकाश का आधार भी लिया गया है।

प्रधान रूप से काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण दोनों ही मे आठ ही रस माने गए है यथा —शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र, करुण, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। काव्यप्रकाश मे "शान्तोऽपि नवमो रस" कहकर नवम 'शान्त' रस का, और साहित्यदर्पण मे किसी-किसी के मत के अनुसार दशवें रस 'वत्सल' का भी उल्लेख कर दिया गया है। इन्हीं दोनो के आश्रय से रसिक-रसाल मे ० रसो का विवेचन किया गया है।

षष्ठ उल्लास—मध्यम काव्य निरूपण

रसिक-रसाल के इस उल्लास मे मध्यम काव्य (गुणीभूत-व्यंग्य) के वही आठ भेद दिए हुए है, जो काव्यप्रकाश व साहित्यदर्पण मे दिए है।

सप्तम उल्लास—चित्रकाव्य-निरूपण

इसमे शब्दालकार और रीति—गौड़ो, वैदर्भी, पांचाली आदि—का वैसा ही विचार किया गया है, जैसा कि काव्यप्रकाश साहित्यदर्पण मे है।

अष्टम उल्लास-अर्थालङ्कार

इसमे अर्थालंकारों का वर्णन है। अलंकारोंके नाम, सख्या, क्रम, लक्षण व उदाहरण की दृष्टि से यह उल्लास कुवलयानंद के आधार पर लिखा गया है। अलंकारों के लक्षण और

अवांतर भेद प्राय' वे ही दिए गए हैं, जो कुवलयानंद मे। कहीं उनका आशय लेकर परिवर्द्धित रूप मे भी उदाहरण दिए गए हैं।

कुवलयानंद मे लुप्तोपमा का यह उदाहरण दिया हुआ है—

तडिद्गौरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दृशो ऽम ;
कान्त्या स्मरवधूयन्ती दृष्टा तन्वी रहो मया।
यत्तया मेलन तत्र लाभो मे यश्च तद्रतेः ;
तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसभवम्।

वही रसिकरसाल मे इस प्रकार दिया हुआ है—

छन छवि भोरी गोरी विधु सो वदन,
तन, सोहत मदन तिय काति अभिराम है। इत्यादि

इसी प्रकार कुवलयानंद के उपमेयोपमा के लक्षण और उदाहरण का प्राय अनुवाद रसिक-रसाल मे दिया गया है।

कुवलयानन्द के न्यूनताद्रूप्य रूपकालकार के उदाहरण 'अचतुर्वदनो' का अनुवाद रसिक-रसाल मे इस तरह दिया गया है—

एक सरूप सनातन हौ गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ सेवक मोष विधायक मानै॥
द्वै भुज केसव के अवतार कुमार कहै गुरु हो पहिचानै।
एक ही आनन चारिहु वेद के गायक हौं कमलासन जानै॥

इसी प्रकार अन्य लक्षण और उदाहरण भी समान रूप से रसिक-रसाल में मिलेंगे।

नवम-दशम उल्लास—काव्य-गुण-दोष-विचार

रसिकरसाल के इस उल्लास मे काव्य के तीन गुण ओज, प्रसाद और माधुर्य और सोलह दोष (१. श्रतिकटु, २ च्युत-संस्कृत, ३. अप्रयुक्त, ४ असमर्थ, ५ निहतार्थ, ६ अनुचितार्थ, ७. निरर्थ ८. अवाच्य, ९. अश्लील, १०. संदिग्ध, ११ अप्रतीत, १२. ग्राम्य, १३. नेयाथ, १४ संश्लिष्ट (क्लिष्ट), १५ अविमृष्ट-विधेयांश और १६ विरुद्धमतिकार) वे हीं हैं, जो काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण मे दिए हुए हैं।

च्युतसंस्कृत-दोष के विषय मे लिखा है कि यह दोष संस्कृत मे ही पाया जाता है। असल मे च्युतसंस्कृत दोष वहीं होता है, जहाँ कोई प्रयुक्त शब्द ऐसा हो, जो उस भाषा के व्याकरण के नियमो के प्रतिकूल प्रयुक्त हुआ हो, अथवा जिसका स्वरूप ऐसा हो, जो व्याकरण से सिद्ध न हो सके। हिंदी-भाषा का वस्तुतः उस समय कोई स्थिर रूप नहीं था, अतएव उसका कोई व्याकरण भी नहीं था और इसलिए इस दोष का निर्वाह इस भाषा मे न हो सका।

कुमारमणि की कविता

मिश्रबंधुओ ने कुमारमणि को पद्माकर की श्रेणी मे रक्खा है। श्रेणी के लिहाज से किसी कवि की जाँच करना यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है और न मिश्रबंधुओं की श्रेणी के औचित्यानौचित्य का विवेचन ही। परतु कविता के गुणों को देखते हुए यह निर्भीक होकर कहना पड़ेगा कि कुमारमणि की

कविता बहुत उच्च श्रेणी की है, और उसमें भाव-प्रौढ़ता के साथ-साथ शब्दालंकार और अर्थालंकार, दोनों ही का अच्छा और यथोचित सन्निवेश है। भाषा की दृष्टि से भी उसमे शब्दों की इतनी तोड़-मरोड़ नहीं है, जितनी अनुप्रासप्रियता के कारण पद्माकर ने की है। कुमारमणि की कविता मे जहाँ अनुप्रास का प्राधान्य है, वहाँ भी प्रसाद-गुण वर्तमान है और भाषा स्वच्छ है। उदाहरणों की कमी नहीं है, और रसिकरसाल मे वस्तुत अनेक पद्य इस बात के साक्षी हैं कि कुमारमणि किस दर्जे के कवि थे। कुछ उदाहरण हम यहाँ दिए देते हैं, जिन्हे देखकर पाठक स्वयं इस कथन की सत्यता का अनुमान लगा सकते हैं*।

कृष्णाभिसारिका का उदाहरण—

नीलपट लपटी लपट ऐसी तन तैसी,
निपट सुहाई मृगमद खौर हेरिए।
नेकु उघरत अंग छबि की तरंग बढ़,
घन संग जामिनी में दामिनी नितेरिए॥
'सुकवि कुमार' मार भूप की मसाल मानौ,
गई कुंज—जाल तहाँ छाई है अँधेरिए।
खोल मुखचंद चंदमुखी लखै जाही ओर,
ताही ओर जोर महताब-सी उजेरिए॥

---

* प्रस्तुत विषय म हम पाठकों का ध्यान भूमिका के उस प्रकरण पर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिसमें 'कुमारमणि और पद्माकर' की कविता के विषय पर कुछ लिखा गया है।—संपादक

सकल तारुण्या का उदाहरण—

नेह मद छाई चितवन चतुराई त्यों,
कुमार सुकुमारताई मालती बिसारिए।
गति गरवाई खुलि छाई है गुराई गात,
बातनि सरसताई सुधानिधि धारिए॥
प्यारी के निहार पानि पगनि दगनि लाली,
कोकनद कांति त्यौं गुलाब वार डारिए।
आनन समान नाही होत याही दुख माँह,
मुख माँह छाँह छबि-नाह के निहारिए॥

वत्सल-रस का उदाहरण —

बैन सुन्यो बन तैं हरि आए बने नट-भेष की भाँति गही है।
मात जसोमति द्वारहि दौरि गई सुत देखन को उमही है॥
कान्हर को मुख चूमति घूमति लाइ हिए निधि मानौ लही है।
आँचर पोछति गारज धूलि है फूल हिए सुख भूलि रही है॥

शातरसानुभाव का उदाहरणः—

जनम गवायौ वादि जित तू सवाद विष,
विषयन मदन विषाद हू अघाइगौ।
कहत 'कुमार' सनसार है असार ताहि
मानि सुखसार अघ औगुन हू छाइगौ॥
चचल वचंक मन रंचक न जानौ कान्ह,
भवपारावार बीच नीच तू समाइगौ।

हरि-नाम-गुन को बिसारि धारि औगुन को,

घरी - घरी बूड़त घरी - सी बूड़ जाइगौ ॥

बीभत्स-रस का उदाहरण —

गरदा से परे मुरदानि के रदासे, तहाँ

लीन्हें अक बैठ्या सिरदार रक प्रेतु है।

लै-लै मुख कोरैं औरैं आवति निकट, दौरैं

दाँत काढि आँत काढि कीन्हो हार हेतु है ॥

पीठ जघ अच्छनि कपोलनि प्रमथ भच्छि,

आतुर छुधा सों रच्छु ह्वै रह्यो अचेतु है।

हाडनि हू चाखि डारै नॉखिन ही आँखिन हीं,

मूँदि सग मॉखिन ही मास भख लेतु है ॥

इस तरह के अधिकांश उदाहरण रसिक-रसाल में यत्र तत्र भरे पड़े हैं।

रसिक-रसाल की शैली

शैली की दृष्टि से कहा जा सकता है कि—कुमारमणि ने काव्यप्रकाश अथवा साहित्यदर्पण की शैली का अनुसरण किया है, और यही शैली विषय-निबंध की दृष्टि से परंपरागत भी है। रसिक-रसाल मे पहले लक्षण दिया गया है, फिर उदाहरण। जहाँ विषय अथवा लक्षण को स्पष्ट करने की आवश्यता दिखलाई पड़ी है, वहाॅ कवि ने वृत्ति (वार्ता) दे दी है। लक्षण और उदाहरण पद्य मे हैं तथा वार्ता गद्य मे। यही शैली तत्कालीन हिंदी के अन्य आचार्य कवियो ने भी बरती है। यथा—

मध्यम काव्य का उदाहरण—

लक्षण—

वाच्य अर्थ तें व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेख,
अगुरु व्यंग्य सो नाम कहि मध्यम काव्य विसेख।

उदाहरण—

बैठी जहाँ गुरु नारि समाज में,
गेह के काज में है बस प्यारी। इत्यादि।

वार्ता—

"इहाँ संकेत-स्थान कान्ह गए, हौं न गई, इहि व्यंग्य तें वाच्यार्थ सुन्दर है।"

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ मे अन्यत्र भी विषय का स्पष्टीकरण किया गया है। कहीं-कहीं हिंदी के लक्षण न कहकर संस्कृत के ग्रंथों के लक्षण ज्यों-के त्यों रख दिए गए हैं। जहाँ आठ सात्त्विक भाव बताए गए हैं, वहाँ रसमंजरी के "स्तंम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः" आदि श्लोक का उद्धरण दे दिया गया है।

इसी प्रकार तैतीस व्यभिचारी भावों का निदर्शन कराते हुए काव्यप्रकाश का "निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः" इत्यादि श्लोक का उल्लेख कर दिया गया है *।

---

* मेरे ध्यान से विषय की स्पष्टता एवं प्रसिद्धि होने के कारण कवि ने उसके अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं समझी है। संपादक

कुमारमणि का सिद्धान्त

यह ऊपर कह दिया गया है कि रसिकरसाल किसी खास सिद्धान्त को लेकर नहीं रचा गया है, और न हिंदी-भाषा के रीतिग्रंथो में इस प्रकार के शास्त्रार्थ की गुंजाइश ही थी, क्योंकि जिस उद्देश्य को दृष्टिगत करके रीतिग्रंथ लिखे गए हैं, वह बिलकुल भिन्न था। कवित्व-शक्ति-प्रदर्शन तथा रसिकता का परिचय देना उस समय के आश्रयदाताओं की रुचि के सर्वथा अनुकूल था, और जो गुण, शैली, शास्त्रार्थ, व्युत्पत्ति और सिद्धान्त-प्रतिपादन इत्यादि आचार्यत्व के परिपोषक गुण थे, उनकी आश्रयदाताओ के यहाँ प्रायः पूछ नहीं थी। समय का प्रभाव अवश्य पड़ता है, अत: तदनुसार हिंदी-कवियों ने आचार्यत्व का डंका संस्कृत-भाषा को लेकर बजाया, और अपने कवित्व तथा रसिकता का परिचय हिंदी-भाषा मे ही देकर आश्रय व उदरपूर्ति का साधन प्राप्त किया। यही कारण था कि—तत्कालीन हिंदी के कवियो ने संस्कृत-साहित्य के सिद्धांतों को ज्यो-का-त्यो लेकर उन्हीं पर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया। उस परिस्थिति मे इसकी गुंजाइश कहाँ थी कि—कोई कवि अपने सिद्धांत को लेकर उसकी विवेचना के लिये शास्त्रार्थ के झगड़े मे पड़ता। हिंदी-साहित्य के रीतिग्रंथ के लेखको ने—जिनकी गणना आचार्यों मे की जाती है—वस्तुतः स्वतंत्र रूप से किसी सिद्धांत की स्थापना नहीं की है। यदि कहीं कुछ दिखाई पड़ता है, तो वह काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण

अथवा रसगंगाधर की झलक-मात्र है, जो यत्र-तत्र बिखरी हुई सी मिलती है।

रसिकरसाल में भी इसी प्रकार से स्वतंत्र रूप से किसी खास सिद्धांत का विवेचन नहीं है। काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि के मत को हिंदी-भाषा मे समझाया गया है। संस्कृत-साहित्य में आचार्यों ने विशेषतया काव्य-लक्षण, तात्पर्यवृत्ति, रस-लक्षण, रसों की संख्या, रस का अनुभव अथवा चर्वणा कैसे होती है, एक अलंकार का दूसरे में समावेश, उनमे से किसी एक के भेद का निराकरण, आदि विषयों पर बड़े प्रौढ और विशद शास्त्रार्थ किए हैं, और उनमें मौलिकता, वैज्ञानिकता एवं पाण्डित्य तथा सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। हिंदी-साहित्य में वैसे शास्त्रार्थ की झलक भी नहीं पाई जाती। फिर रसिकरसाल मे भी इस तरह के विवेचन की आशा रखना व्यर्थ है*।

रस क विषय मे कुमार-मणि ने जो—

"लौकिक और अलौकिकै द्वै जानहु रस-ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध अरु कवित नृत्य में और॥"

---

* कुमारमणि का केवल उद्देश यही था कि—वह काव्यप्रकाश के शास्त्रार्थ को हिंदी भाषा-भाषियों के सम्मुख रखते। इसी कारण उन्होंने 'रसिक-रसाल' की रचना की है। "काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा मे रचि हाल" आदि दोहा इसी अर्थ का स्पष्टीकरण करता है। अत कवि काव्यप्रकाश के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन करने मे स्वतन्त्र नहीं था। सपादक

आदि जो ४-५ दोहे लिखे हैं, वे भी स्वतन्त्र न होकर संस्कृत के सिद्धांतों की छाया हैं। पिछले दो दोहो में शृंगार-रस की उत्तमता स्थापित की गई है, और नायक-नायिकाओ के भेद-प्रभेद, उनके विलासादि, आलम्बन-उद्दीपन-विभावादि, अनुभव, संचारी आदि का जो आगे रसिकरसाल में वर्णन किया गया है, उसकी पुष्टि इस विचार से की गई है कि—पाठक उसमें निरी रसिकता ही न देखें, बल्कि उसको उस श्रद्धा से देखें, जिससे श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाएँ देखी जाती हैं।

संस्कृत-साहित्य मे भरत मुनि के काल से लेकर जगन्नाथ पंडितराज के समय तक इन साहित्यिक सिद्धान्तों का इतना सूक्ष्म व विस्तृत विवेचन हो गया है कि—न तो कोई युक्ति, सिद्धान्त अथवा मत ही बाकी बचा है, और न नये अन्वेषण अथवा बारीकियाँ निकालने की कोई गुंजाइश ही रह गई है। ऐसी स्थिति म अपेक्षाकृत बहुत ही कम पनपे हुए हिंदी-साहित्य के आचार्यों अथवा कवियों से यह आशा रखना कि वे अपना ही राग गा निकलेंगे, और उसको श्रद्धा के साथ सुननेवाले विद्वान् मौजूद रहेंगे, दुराशा-मात्र ही है।

हिंदी-साहित्य में रीति-शास्त्र के अन्य आचार्य और

कुमारमणि

खेद का विषय है कि जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य के प्रमुख आचार्यों के ग्रंथ मुद्रित हो जाने से सुलभ हो गये है,

उसी प्रकार हिंदी-साहित्य के आचार्यों के ग्रन्थ अद्यावधि सुलभ नहीं हुए हैं। प्रथम तो बहुत-से छपे ही नहीं हैं, और यदि कुछ छप भी गये हैं, तो वे इतने दुष्प्राप्य हैं कि सर्व-साधारण तक उनकी पहुँच नहीं हैं। कुछ प्राप्य भी हैं, तो वे एकाङ्गी हैं और उनसे एक आचार्य की दूसरे आचार्य से उत्तमता या हीनता की विवेचना नहीं की जा सकती। बहुत-से जो छपे है, वे या तो अलंकार पर हैं या नायिका-भेद पर।

प्रारंभ में उन आचार्यों का नाम बतला दिया गया है, जिनके ग्रंथ उत्तम कोटि के हैं, और जिन्होने काव्य के सब अंगो पर कुछ न कुछ लिखा है, परंतु वे ग्रंथ प्रेस तक नहीं पहुँच सके हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उत्साही और साहित्य-"प्रेमी सज्जन उनके छपवाने का बीड़ा उठावें। उक्त ग्रंथों के आधुनिक शैली से मुद्रित और प्रकाशित होने पर हिंदी-काव्य-साहित्य का बड़ा उपकार होगा।

हिन्दी साहित्य के पारखी भिखारीदास को उच्च श्रेणी का आचार्य समझते है, परतु यह बात कहाँ तक उचित एवं दृढ है, इस विषय मे यहाँ एक-दो शब्द लिख देना अनुचित न होगा।

वास्तव मे हिन्दी-साहित्य के रीति-शास्त्र तथा संस्कृत-साहित्य के रीति-शास्त्र मे कोई भेद नहीं है। भाव, सिद्धान्त, परिभाषा, उदाहरण आदि सारी बाते वही है, जो सस्कृत-ग्रंथों मे हैं, केवल भाषा ही नाम मात्र की हिन्दी है। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य मे आचार्य-पद उन्हीं को प्राप्त हुआ है, जिन्होंने

संस्कृत के रीति-शास्त्र के विषय को उसमे लिख दिया है। हिन्दी-साहित्य-ग्रंथों मे इस नकल को जितनी पूरी मात्रा में दिखाया गया है, समालोचकों ने उसी हिसाब से उस आचार्य की गुरुता और लघुता का परिमाण निकाल लिया है। ऐसी स्थिति मे हिन्दी के इन आचार्यों के काम की ठीक परख वही कर सकता है, जिसे संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का पूरा ज्ञान हो। खेद का विषय है, आजकल हमारे हिन्दी-साहित्य के बहुत-से समालोचकों की समालोचनाओं मे कई त्रुटियाँ ऐसी दिखाई पड़ती हैं, जिनसे तुरन्त ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि उनको संस्कृत-साहित्य का ज्ञान कितना है।

संस्कृत-साहित्य मे 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' इस विषय के अच्छे एवं प्रामाणिक ग्रंथ हैं, और उन्हीं के आधार पर हमारे हिन्दी-साहित्य के आचार्यों ने ग्रंथ लिखे हैं।

भिखारीदास का काव्यनिर्णय और कुमारमणि का रसिक-रसाल अधिकतर काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के आधार पर ही लिखे गये हैं। परन्तु विषय-प्रतिपादन करने मे और परिभाषा के उल्लेख करने मे, दोनो मे बड़ा अन्तर है। रसिक-रसाल में संस्कृत-साहित्य के इन ग्रन्थों का विषय करीब-करीब ठीक ही दिया गया है, परन्तु काव्यनिर्णय में बड़ी कमी है। काव्यनिर्णय में बहुत-से स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ लक्षण अथवा परिभाषा अपूर्ण हैं अथवा अशुद्ध किंवा भ्रामक हैं।

इस छोटी-सी भूमिका मे उन सबका दिग्दर्शन कराना असंभव है तो भी निम्नलिखित दो-चार उदाहरणों से पाठक समझ सकते हैं कि हमारी धारणा कहाँ तक सत्य है।

पहले लीजिए लक्षणा की परिभाषा। दासजी लिखते हैं—

'मुख्य अर्थ को बाध सो शब्द लाक्षणिक होत।
रूढि अप्रयोजनवती द्वै लक्षणा उदोत॥"

इसके पहले चरण मे लक्षण है और दूसरे मे भेद। पहले चरण पर यदि विचार किया जाय, तो फौरन् मालूम होगा कि इसमें न तो लक्षणा का ही कोई लक्षण दिया है और न लाक्षणिक शब्द का ही। फिर "मुख्य अर्थ को बाध" इतना कह देने से लक्षणा का लक्षण नहीं बन सकता। लक्षणा की भुक्ति के लिये तीन बातो की आवश्यकता होती है। यथा—१. मुख्य अर्थ का बाध, २. मुख्य अर्थ से निकट संबंध, ३. रूढि अथवा प्रयोजन, इन तीनों ही बातों की पूरी आवश्यकता होती है, और इसीलिए संस्कृत साहित्य के प्रत्येक प्रमुख ग्रन्थ में इन्हीं तीनों का वर्णन है। लक्षणा मे मुख्य अर्थ का बाध तो पहली चीज़ अवश्य है, परंतु यदि मुख्य अर्थ से संबंध रखनेवाला अर्थ अभिप्रेत न होवे, तो फिर व्यजना का निराकरण नहीं हो सकता, और फिर इस लक्षण में अतिव्याप्ति का दोष आ जायगा।

इसके मुक़ाबिले मे रसिकरसाल का उदाहरण लीजिए। उसमे लक्षणा का लक्षण इस तरह दिया हुआ है—

"मुख्य अर्थ संबंध ही मुख्य अर्थ को बाध।
रूढि पाइ वा काज लहि लच्यारथ को साध॥"

स्पष्टतया यह मालूम हो जायगा कि दोनों लक्षणों मे कौन-सा लक्षण ठीक है।

'काव्यनिर्णय' मे भाव का लक्षण यह दिया है—

"बालक मुनि महिपाल अरु देव बिषौरति भाव।"

संस्कृत-साहित्य से परिचय रखनेवाले जानते हैं कि भाव का यह लक्षण अपूर्ण है, क्योंकि भाव का ठीक लक्षण यह है कि देवता, मुनि, राजा आदि के प्रति रति अथवा व्यञ्जित व्यभिचारी भाव भाव की श्रेणी को पहुँचते हैं। इसी सिद्धांत को लिए हुए काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के लक्षण हैं। यथा—

"रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः।"
भाव प्रोक्त. .... ॥ काव्यप्रकाश

"संचारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः।
उद्बुद्धमात्र. स्थायी च भाव इत्यभिधीयते॥" साहित्यदर्पण

रसिकरसाल का भाव का लक्षण व उदाहरण मिश्रित है, परतु वह काव्यनिर्णय की अपेक्षा कहीं अच्छा है। यथा—

"मौलिन सों हिय परसपर, बधुनिरह नृप मोति।
गुरु दैवत हरिभक्ति मे, भनत भाव रसरीति॥" इत्यादि

फिर लीजिए 'काव्यनिर्णय' के उपादान लक्षणा को। इसका लक्षण और उदाहरण भी गड़बड़ाध्याय है।

इसी तरह और भी कई उदाहरण दिए जा सकते है। काव्यनिर्णय के किसी अच्छे सटीक सस्करण मे इन त्रुटियों का पूरा विवेचन किया जा सकता है, स्थानाभाव के कारण यहाँ ऐसा नहीं किया जा सकता।

एक बात यहाँ खास तौर पर कह दी जाती है। विश्व-विद्यालय तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओं मे पाठ्यक्रम मे और ऊँची परीक्षाओं मे काव्यनिर्णय पाठ्यपुस्तक रक्खी जाती है, उद्देश्य यही होता है कि विद्यार्थी को साहित्य-शास्त्र का इससे कुछ ज्ञान हो जावे। परंतु 'काव्यनिर्णय' की त्रुटियो को देखते हुए ऐसा होना बड़ा कठिन है।

हिन्दी का समस्त साहित्य-शास्त्र अथवा रीतिशास्त्र संस्कृत के एतद्विषयक शास्त्र की बिलकुल नकल ही है, और इस नकल के लिहाज से, हमारी समझ मे, काव्यनिर्णय का स्थान बहुत नीचे है। बहुत से और भी कई ग्रंथ है, जिनमे इस विषय का अच्छा, युक्तियुक्त विवेचन किया गया है इसलिये उनमे से किसी एक को पाठ्यक्रम के लिये चुना जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को इस शास्त्र का वास्तविक ज्ञान हो सके। विद्या-प्रेमी और विद्या हितैषी लोगों को तद्विषयक ग्रंथो के प्रकाशनार्थ जरूर प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत-साहित्य के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण को पढ़ लेने पर इस शास्त्र का काफ़ी अच्छा ज्ञान हो सकता है, और उच्च परीक्षाओ में इन्हीं दो ग्रंथों का मान है, परंतु हिंदी-साहित्य में

ऐसे कोई दो ग्रंथ अभी तक दुनिया के सामने नहीं आये हैं, जिनको पढकर हमें इस विषय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सके। कहा जाता है कि सोमनाथ ने समग्र काव्यप्रकाश का अच्छा अनुवाद किया था। और भी कई कवियो ने काव्य-प्रकाश के अनुवाद किए है। रसिकरसाल भी इस विषय का वस्तुतः एक उत्तम ग्रंथ है, और इससे भी विद्यार्थियों के इस विषय को कमी पूरी हो सकती है। आशा है, हिंदी-साहित्य के हितैषी लोग 'रसिकरसाल' का उचित आदर करेंगे*।"

---

* मेरे उक्त मित्र का प्रस्तुत लेख यहाँ समाप्त होता है। सम्पादक।

रसिकरसाल का प्रकाशन

सी कवि ने ठीक कहा है—"समय एव करोति बलाबलं।" बस यही उक्ति प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन मे चरितार्थ होती है।

आज से १४ वर्ष पूर्व जब मैं अपना विद्यार्थि-जीवन समाप्त कर वृत्त्यर्थ बंबई जाकर रहा (सं० १९८० की बात है), मेरे हृदय मे स्वकीय पूर्वपुरुष 'कुमारमणि' कवि के प्रस्तुत ग्रंथ के मुद्रण कराने की अभिलाषा जागरूक हुई। हिंदीसाहित्यसम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाने के कारण हिंदी-साहित्य के प्रति रुचि होना स्वाभाविक ही था, इधर जातीय उन्नति का जोश हिलोरें ले रहा था। फलतः दोनो के सम्मिश्रण ने 'रसिकरसाल' के प्रकाशनार्थ उत्साह उत्पन्न कर दिया। लेखनी लेकर बैठा, तो दो मास के भीतर ही ग्रंथ की प्रेस-कापी तैयार कर ली। उसे सब प्रकार की सामग्री से सुसज्जित कर किसी संस्था की प्रतीक्षा करने लगा, जो इसे प्रकाशित कर मेरे उत्साह को द्विगुणित कर दे।

नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से तदर्थ पत्र व्यवहार किया

गया, और उसे देखने के लिये ग्रंथ की प्रतिलिपि भेज दी गई। आशा थी कि ग्रंथ अब प्रकाशित हुए बिना न लौटेगा। पर कुछ दिनो बाद उत्तर मिला—"अभी हमारे पास कार्य अधिक है। हम छापने को विवश हैं।" मेरा विचार था कि यह ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा को दे दूँ, यदि वह इसे प्रकाशित कर दे, पर मेरा मनोरथ मेरे पास ही रह गया। क्या किया जा सकता था? उसके पास भी तो विशाल अप्रकाशित हिंदी-साहित्य प्रकाशित करने को पड़ा हुआ है?

इधर से निराश होकर मैंने उक्त ग्रन्थ हिंदी-साहित्य सम्मेलन के पास भेजा। वहाँ से वह निरीक्षणार्थ पं० पद्मसिंह शर्माजी के पास भेजा गया। कुछ दिनों लिखा-पढ़ी की दौड़धूप करने पर शर्माजी के अभिप्राय के साथ साहित्यसम्मेलन का भी उत्तर मिल गया। सम्मेलन के सामने हिंदी-प्रचार और परीक्षा-प्रचार का कार्य था। हाँ, पद्मसिंह शर्माजी के अभिप्राय से मुझे ग्रंथ की मौलिकता, उपादेयता तथाच प्रकाशन की आवश्यकता के प्रति और भी अधिक विश्वास बढ़ गया। उनके पत्र से ग्रंथ की शैली किस प्रकार रखनी चाहिये, यह विदित हो गया। उन्होने लिखा था कि "कवि का अभिप्राय उन्हीं के शब्दों में प्रकट कर देना चाहिए।" बात यह हुई थी कि—रसिकरसाल की वर्तमानकालिक उपयोगिता हो जाने के लिये मैंने उसमे यत्र-तत्र आनेवाले गद्यांश को 'खड़ी बोली' का रूप दे दिया था, जो मुझे अब ज्ञात हुआ है कि वह मेरी

अनधिकार चेष्टा थी। दुर्भाग्य है कि आज वह पत्र मेरे पास उपलब्ध नहीं होता। अस्तु।

उक्त अभिप्राय और दोनों ओर से 'टका सा' जवाब मिल जाने पर मैंने निश्चय किया कि अभी न तो ग्रंथ के प्रकाशन का ही समय आया है और न कवि की प्रसिद्धि का ही। अत जब कवि के 'भाग्योदय' होंगे, सब प्रकार का प्रबंध स्वतः हो जायगा।

जिस समय मैंने 'मिश्रबंधु-विनोद' पढ़ा, मुझे 'कुमारमणि' का संशोधित परिचय उसके द्वितीय संस्करण मे भेजना पड़ा। उस समय उसमे मिश्रबंधुओं ने ग्रंथ के लिये अपना अच्छा अभिप्राय व्यक्त किया था। मैंने 'कुमारमणि' के विशेष चरित्र के परिज्ञानार्थ उनकी लिखित तथा स्वकोय हस्तलिखित-पुस्तकालय की पुस्तकों का परिशीलन कर यत्र-तत्र से ऐतिहासिक सामग्री संकलित की, जिसके फल-स्वरूप पाठकों की सेवा मे कवि की जीवनी दी जा सकी है। इसके बाद 'रसिकरसाल' की प्रेस-कापी मेरे उत्साह के साथ एक बस्ते में बंद, मुख छिपाये गत १३ वर्षों तक पड़ी रही।

काल-चक्र ने कहिये अथवा मेरे भाग्य ने कहिये, मुझे कांकरोली-नरेश गो० श्री१०८ श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज के अध्यापन-कार्य पर नियुक्त किया, आज उस कार्य को करते मुझे उतना ही समय व्यतीत हुआ है।

स्वनाम-धन्य उक्त महानुभाव एक योग्य धर्माचार्य, विद्वान्,

तथा साहित्य-विद्या-कला-प्रेमी नवयुवक हैं। आपकी विद्याभि-रुचि, उत्साह, उदारता तथाच कार्य-तत्परता से ही कांकरोली-जैसे स्थान मे विद्या को विकसित होने का सद्भाग्य अधिगत हुआ है।

आपके उदार आश्रय मे सं० १९८५ मे विद्याविभाग की स्थापना हुई, और उसके अंतर्गत अन्य संस्थाओ को उद्भवित होने का अवकाश मिला, जिनमे से 'श्रीद्वारकेश कवि मण्डल' भी एक है।

द्वारकेश कवि मण्डल के द्वारा सं० ८९-९० की समस्या-पूर्तियों का संग्रह 'कविता-कुसुमाकर' नाम से दो भागों मे प्रकाशित हुआ, जिसमे कुछ नवीन कवियों की संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओ की सुललित कृतियो का समावेश था। कहना होगा कि हमारे कथित प्रयत्न का साहित्यिकों ने सराहा, और हमें पूज्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का भी शुभ अभिप्राय उक्त ग्रथ पर प्राप्त हुआ।

किन्हीं मित्रो के परामर्शानुसार हमे यह अनुभव हुआ कि समस्या-पूर्तियो से साहित्य की ठोस सेवा नहीं होती, उसके लिये प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों का प्रकाशन होना चाहिए, जो लुप्त होते जाते हैं, । जिसका कारण उनकी अप्रकाशित अवस्था है। प्राचीनता के प्रति प्रतिदिन जागरूक होनेवाली लोकाभि-रुचि के प्रदर्शन ने भी हमारे इस अनुभव को दृढ किया, और हमारे सम्मुख किसी प्राचीन साहित्य-ग्रंथ के प्रकाशन की कल्पना मूर्तिमती होने लगी।

इधर विद्याविभाग की दशाब्दी-महोत्सव (इस वर्ष) करने का विचार स० १९९३ के फाल्गुन मास मे हुआ। साहित्य के नाते विद्याविभाग द्वारा कोई साहित्यिक ग्रंथ का उपहार साहित्यज्ञ व्यक्तियो की सेवा मे उपस्थित करना आवश्यक समझा गया। विद्या-समिति के विचार-विनिमय होने पर 'रसिकरसाल' के सौभाग्य का उदय हुआ, और इसे साहित्य-जगत् के समक्ष उपस्थापित करने का शुभ अवसर आया।

विद्याविभागाध्यक्ष गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन की आज्ञा प्रदान की, और यह 'श्री-द्वारकेश कवि-मण्डल' के साहित्यिक कार्य-रूप मे, विद्या-विभाग द्वारा, प्रकाशित किया जा रहा है।

रसिकरसाल की प्रेस-कापी एक ऐसी कापी से तैयार की गई थी, जो स्वयं अशुद्ध एवं यत्र-तत्र असम्बद्ध एवं भ्रामक थी। सौभाग्य से प्रेस मे छपने को देने के बाद हमे रसिकरसाल की एक शुद्ध प्राचीन (संभवतः कवि के समय की) पुस्तक मिली *, जिसने हमारी असुविधाओ को निवृत्त कर दिया। इस पुन संशोधन ने यद्यपि हमें और प्रेस, दोनो को कुछ अव्यवस्था में डाल दिया था, पर ग्रंथ की संशुद्धि के ऊपर उसे निछावर कर दिया गया।

'रसिकरसाल' के भाषा-संशोधन के विषय मे एक

* इस पुस्तक के आदि अंत के दो पत्र नहीं मिले।

कठिनाई हमारे सामने आई, जिसका सुधार तब तक नहीं हो सकता, जब तक व्रजभाषा के शब्दों का कोई निश्चित रूप निर्धारित न कर दिया जावे। उदाहरणार्थ—ज्यों, त्यों, लिये, दियो, तें, ले, इत्यादिक शब्दो का द्वितीय रूप 'ज्यौ, त्यौ, लिए दियौ हौ, तै, लै' भी साहित्य मे चल रहा है। इधर 'व' और 'ब' का, 'स' और 'श' का परस्पर परिवर्तन भी बड़ी गडबड़ी मचाता है। यदि व्रजभाषा के चालू नियमानुसार 'व' को 'ब' बना दिया जावे तो 'वन के' और 'बन के' दो पृथक्-पृथक् अर्थ एक ही रूप को धारण कर लेते हैं—इसी प्रकार 'शंकर' को 'संकर' का रूप दे देने पर जो अर्थ-वैचित्र्य हो जाता है, यह भी ध्यान देने योग्य है। फिर इस आपत्ति से बचने के लिये यदि 'शंकर' शंकर ही रक्खा जाय, तो फिर 'शेष' को 'सेष' अथवा 'सेस' क्यों बनाया जाय ? इसी प्रकार बहुवचन का द्योतक 'न' जो शब्दो के अंत मे आता है, पृथक् हो जाने पर निषेधार्थ का परिचायक हो जाता है। उदाहरण लीजिये—'फूलत रसालन बिसाल धरै सौरभ कों', 'हासन बिलासन की भाँति-भाँति दौर है' यद्यपि प्राचीन पुस्तक मे कई स्थलों पर ऐसे स्थल मे 'रसालनि' 'हासनि' 'बिलासनि' इस प्रकार रूप पाया जाता है, फिर भी यह सार्वत्रिक नियम नहीं है। अतएव कहना पड़ता है कि—भाषाशास्त्रियो के द्वारा जब तक इस प्रकार के शब्दों का कोई रूप निर्धारित न हो तब तक प्राचीन ग्रंथ-प्रकाशको की एक प्रकार से अपकीर्ति ही है। और

ऐसा होने पर मनचले समालोचको को 'चिड़ी कौं-कौं' करने का अच्छा मसाला मिल जाता है। अस्तु।

प्रस्तुत ग्रंथ मे, हमसे जहाँ तक बन सका है, शब्द-संशोधन, भाषा और प्रकार तथा सजावट का प्रयत्न किया गया है। फिर भी यत्र-तत्र त्रुटियों के लिये प्रकाशक के अतिरिक्त और कौन उत्तरदायी माना जा सकता है? और वह सिवा क्षमा याचना के और कहाँ तक अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है? हम भी तदर्थ उसी कर्तव्य का अनुसरण किये लेते है।

अपना वक्तव्य समाप्त करने के पूर्व हम सामयिक प्रवाहानुसार अपने उन पूज्य महानुभाव तथा मित्रों के उपकारज्ञ हो जाना चाहते है, जिन्होंने हमारे प्रस्तुत कार्य में यथाशक्य साहाय्य प्रदान किया है।

१ स्व० पं० श्रीकृष्ण शास्त्रीजी तैलंग—हेड पंडित हाईस्कूल रायपुर (सी० पी०)। आप ही के प्रोत्साहन तथा प्रतिलिपि से इस ग्रंथ के प्रकाशन का आयोजन हुआ है।

२. पं० पीताम्बरजी नेत कविभूषण, राज्यकवि, ओडछा-स्टेट, टीकमगढ़। आपके पास के ग्रंथ से हमे रसिकरसाल के संशोधन मे बहुत कुछ सौकर्य हुआ है।

३. पं० आशुकरणजी गोस्वामी एम्० ए० (३) श्रीगंगानगर (बीकानेर)। आपने आवश्यक ग्रन्थ का परिचय और वक्तव्य लिखकर हमें विशेष अनुगृहीत किया है। आपक उक्त लेख इसके पूर्व ही सम्मिलित रूप में प्रकाशित हुआ है।

४. श्रीयुत नारायणलाल वर्मा 'नरेन्द्र' कांकरोली।

५. श्रीपं० लक्ष्मीनारायण साहित्यशास्त्री, कांकरोली। उक्त दोनो महानुभावो ने प्रूफ संशोधन, लेखन आदि मे हमारा हाथ बटाया है।

६. 'संचालक गंगा-ग्रथागार लखनऊ' जिनके सौजन्य एवं तत्त्वावधान से हम प्रस्तुत ग्रंथ को बड़ी सहूलियत और सुन्दरता के साथ प्रकाशित कर सके हैं। अस्तु।

ग्रंथ के प्रचार के लिये कहना हम उतना ही अनावश्यक समझते हैं, जितना 'कस्तूरी की सुगंधि के लिये शपथ लेना'। ग्रंथ जिस प्रकार का है, जैसा है, और जितना है, सहृदय साहित्यज्ञ सुधियो एवं सत्समालोचकों के सम्मुख सादर समर्पित है। राष्ट्र-भाषा हिंदी की प्राचीन, अप्रकाशित, अमूल्य सम्पत्ति होने के कारण उसके उचित आदर करने का भार साहित्यिक संस्थाओ पर ही है। इस विषय में हम विशेषतया नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग आदि संस्थाओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। यदि ये मान्य संस्थाएँ उचित उत्साह-प्रदर्शक, अभिप्राय-प्रदान, परीक्षा पाठ्य-ग्रंथ-निर्वाचन एवंच अन्य प्रकार के प्रचार द्वारा हमे केवल उत्साह ही प्रदान करने की कृपा करेंगी, तो हम पुनः प्रस्तुत ग्रंथ का सस्ता, सुंदर, सुबोध संस्करण प्रकाशित करेंगे, और इसके साथ अन्य ऐसे साहित्य-ग्रंथों के प्रकाशन का उपक्रम करेंगे, जो प्राचीन

होने के कारण अभी तक अज्ञात एवच अनुपलब्धप्राय है * । सम्प्रति हमारे सामने एक ही उद्देश्य था, और वह था 'कवि कुमारमणि और उनके ग्रंथ को किसी प्रकार साहित्य-ससार के समक्ष लाने का ।' इसमे कहाँ तक सफलता मिली है, यह या तो दयामय श्रीहरि ही जानते हैं, या जानेंगे सहृदय सज्जन, जो साहित्य-सुधा के प्यासे है ।

ॐ शान्तिः शान्ति शन्ति ।

कांकरोली
चै० शु० १ स० १९९४

विधेय—
पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद
का० वे० शा० शु० म०

* विद्याविभाग के दशाब्दी-महोत्सव का आयोजन हो जाने पर (स० १९९४ के कार्त्तिक मास क आसपास) ऐसे ग्रथो का काकरोली मे एक प्रदर्शनी की जायगी, जो वहाँ के विद्याविभागान्तगत 'श्रीसरस्वती भण्डार' मे सुरक्षित हैं । इसकी विशाल सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी ।—सपादक

ग्रन्थ-प्रकाशन

पोतकूचि, आन्ध्र विप्रकुल - तिलकायमान ,
जिनको सुशाखा शाकल, वेद ऋक जान्यौ है ;
प्रवर प्रसिद्ध पंच, गोत्र वत्स शील बुध—
भट्ट 'हरिवल्लभाभिधेय' पहिचान्यौ है ।
तनुज तदीय 'गढपहरा'* निवासी विज्ञ ,
पण्डित 'कुमारमणि' भूप - सनमान्यौ है ;
उनको विशाल हाल कीर्तिमय काव्य-कर्म ,
'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यौ है ।

बालकृष्ण† चरणानुचर
तद्वंशज, बुध - दास ,
कियो कण्ठमणि ग्रथ को
मुद्रण, मजु प्रकाश ।
वेद भक्ति-युग चंद्र (१९९४) मित
सवत मधुर वसंत ,
मुद्रित 'रसिक-रसाल' लखि
विलसतु सुहृदु व सत ।

विधेय—

कांकरोली
वैशाख शुक्ल १५
सं० १९९४

पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
'देशिकेन्द्र'

---

* 'गढपहरा' ग्राम सागर जिला

† पितृचरण प० बालकृष्ण शास्त्रीजी दतिया नरेश-राजगुरु

कवि कुमारमणि शास्त्री का वंश

—— .*: ——

मुख्य पूर्व पुरुष—

१ माधव पण्डितराज, २ रुद्रण, ३ बलभद्र, ४ मधुसूदन कविपण्डित

—— * ——

पं० रुद्रणाचार्य
|
पं० चतुर्भुज शा०
|
पं० हरिवंश शा०

- १ पं० वेदमणि शा०
- २ पं० कण्ठमणि शा०
  - पं० हरिवल्लभ शा०
    - १ * पं० कुमारमणि शा०
      - पं० भोजराज शा० (हरिजन)
        - पं० नारायण शा०
          - पं० बिहारीलाल शा०
            - १ पं० मुकुन्द शा०
              - १ पं० बालकृष्ण शा०
                - † पं० कण्ठमणि शा०
              - २ पं० श्रीकृष्ण शा०
                - पं० गोपालकृष्ण
              - ३ पं० हरिकृष्ण शा०
                - पं० हृषीकेश शा०
              - ४ पं० उपेन्द्र शा०
                - पं० पुरुषोत्तम शा०
                - पं० दामोदर शा०
            - २ पं० नारायण शा०
            - ३ पं० यदुनाथ शा०
            - ४ पं० श्रीनिवास शा०
      - पं० कृष्णदेव
    - २ पं० वासुदेव शा०

---
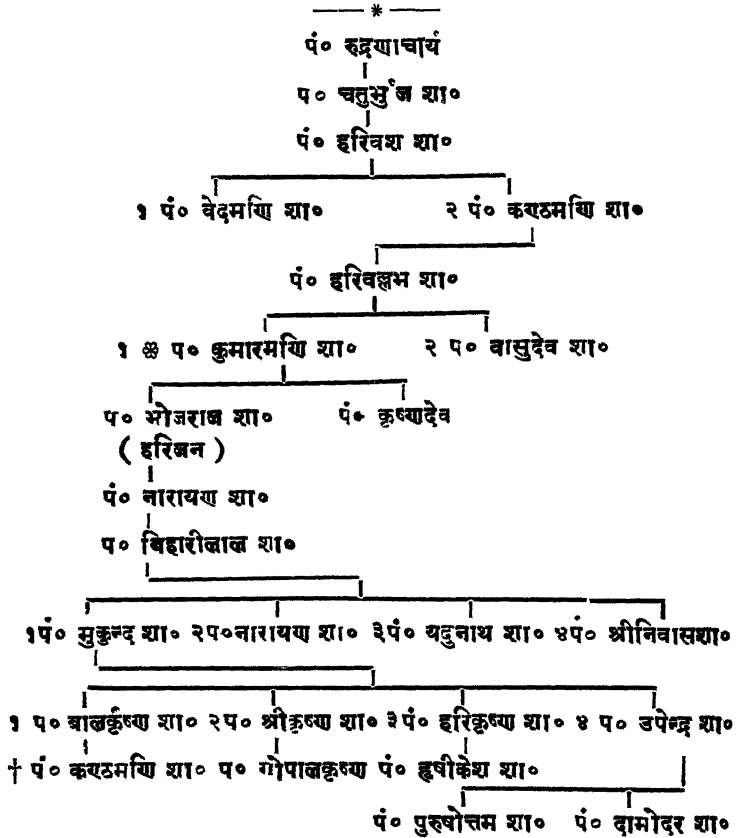
* रसिकरसाल ग्रन्थकर्ता

† रसिकरसाल ग्रन्थसम्पादक

रसिकरसाल-विषयानुक्रमणिका

—:०:—

विषय पत्र संख्या

विषय पत्र-संख्या

इति विषयानुक्रमणिका

श्रीहरिः

प्रथम उल्लास

——.०——

मङ्गलाचरण

कवित्त

गोपिन को मीत, सुर - नर - नाग - गीत,
गुन - गननि प्रतीत, पीतपट कटि धारे है,
मंजुल मुकुट, कंध कामरी, लकुट कर,
वन भटकत, नट - वेष को सु धारे है।
बच्छन को चारक, उचारक निगम को,
"कुमार" परिचारक के काजहि सम्हारे है,
एकै मतिधारी लोक - वेद - निरधारी न्यान,
गिरिवरधारी, कान्ह ठाकुर हमारे हैं॥ १॥

सवैया

नन्दकमार "कुमार" सनातन, हौ भवसातन ज्ञान बिसेखे।
ईछत रावरी सेवा सरूप परीछत कै कै परीछत पेखे।
पूरन ब्रह्म परै पर तै परमानँद हौ, परमानँद देखे।
ज्यौ सविता सब तारन मे अवतारन मे अवतार यौ लेखे॥ २॥

दोहा

सुरगुरु - सम मण्डन - तनय, बुध जयगोविद ध्याइ।
कवित - रीति, गुरु - पद परसि अरु पुरुषोतम पाइ ॥ ३ ॥
काव्यप्रकाश - विचार कछु रचि भाषा मे हाल।
पण्डित सुकवि "कुमारमनि" कीन्हौ "रसिकरसाल" ॥ ४ ॥

काव्य-प्रयोजन

दोहा

अर्थ - धर्म - जस - कामना लहियतु, मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित मे ब्रह्मानन्द सवाद ॥ ५ ॥
तातै कविता - ज्ञान मे कीजे जतन विवेक।
न्यारौ वेद - पुरान तै शब्द सुखद यह एक ॥ ६ ॥

काव्योत्पत्ति को हेतु

दोहा

शक्ति, शास्त्र, लौकिक सकल, परवीनता समेत।
कवि-शिक्षा, अभ्यास भनि कवित उपज को हेत ॥ ७ ॥
उपजत अद्भुत वाक्य जो शब्द अर्थ रमनीय।
सोई कहियतु कवित है, सुकवि कर्म कमनीय ॥ ८ ॥
ध्वनि इक अंगरु व्यंग पुनि चित्र नाम निरधार।
उत्तम, मध्यम, अधम कहि त्रिविध सुकाव्य विचार ॥ ९ ॥

काव्य ध्वनि

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यंग जहँ सुन्दर अधिक विशेष।
पण्डित तासो ध्वनि कहत, उत्तम काव्य सुलेख ॥ १० ॥

सवैया

खौर को राग छुट्यौ कुच को, मिटिगौ अधरारँग देख्यौ प्रकास हि।
अंजन गौ दृग-कंजनि ते, तनु कंपत, तेरौ रुमंच हुलास हि।
नेकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हौ अरी मन मेरो निरास हि।
बावरी ! बावरी न्हान गई पै तहाँ न गई उहि पीउ के पास हि॥११॥

इहाँ चतुरा उत्तमा नायिका के कहिबे मे स्नान काज वाच्यार्थ ते, पीउ पास सुरत ही को गई, यह 'उहि पिउ' पद ते व्यग्यार्थ प्रधान सुदर है। तदनुसार ते रतिकार्य रसाग प्रभृति व्यग्य जानिये।

मध्यम काव्य

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यग जहँ सुन्दर अधिक न लेख।
अगुरु व्यंग सो नाम कहि मध्यम काव्य विशेष ॥ १२ ॥

सवैया

बैठी जहाँ गुरुनारि - समाज मे गेह के काज में है बस प्यारी।
देख्यौ तहाँ बन ते चलि आवत नन्दकुमार "कुमार" बिहारी॥

लीन्है लखी कर कंज मे मजुल मंजरी वंजुल कुंज-चिहारी।
चन्द-मुखीमुखचन्दकी कान्तिसुभोर के चंद-सी मंद निहारी॥१३॥

इहाँ "कान्ह सकेत स्थान गये, हौ न गई" यह व्यग्य ते वाच्यार्थ सुदर है।

चित्र-काव्य

सवैया

राम नरिन्द की फौज के धाक हिये हहरी जल छीन ज्यौ मच्छी।
दीह दरीनि दुरी गिरि कच्छनि सिघनि दीनता लच्छि न भच्छी॥
तच्छन एक कहूँ थिरलच्छ न लच्छ छनच्छबि सी तन लच्छी।
गौनअलच्छित,गच्छतींतच्छन,वंच्छतीपच्छ,विपच्छमृगच्छी॥१४॥

अर्थ-चित्र

कवित्त

विमल बिसाल हिमगिरि आलबाल लसै,
जाके मूल शेष के सहस फन जाल हैं,
रामजू की जस-लता दिन-दिन बाढ़ी जाके,
बिलासनि निवास कैलास-सृङ्ग डाल हैं।
डार गंगधार तिहुँलोक-गति निरधार,
कहत "कुमार" सुर-सरिता प्रवाल हैं,
मोतीहार, हार नखतावलि अपार चंद्र-
सुधा को अधार फल फूल की प्रभा लहैं॥ १५॥

इहाँ अर्थालंकार रूपक-प्रधान है।

इतिश्रीहरिवल्लभभट्टात्मज - कुमारमणि - कृते
रसिकरसाले त्रिविधकाव्य - निरूपणं
नाम प्रथमोल्लास ॥ १ ॥

द्वितीय उल्लास

उत्तम काव्य के भेद

दोहा

जामधि व्यंग प्रधान सो उत्तम काव्य बताय।
शक्ति लक्षणा मूल सो द्वैविध व्यंग जताय॥ १॥
वस्तु - रूप रस - रूप त्यौ भूषन - रूप प्रमान।
शक्ति-मूल जो व्यंग है तीन भाँति इमि जान॥ २॥
व्यंग लक्षणा मूल सो द्वैविध गनि इह ठौर।
अर्थान्तर-संक्रमित इक अधिक तिरस्कृत और॥ ३॥
व्यंग सकल इमि पंचविधि गन्यौ, कवित के ठाम।
रस व्यंग सु अलच्छ-क्रम और लच्छ-क्रम नाम॥ ४॥

अर्थ-व्यंग जानिबे को वृत्ति-विचार कहियतु है —

दोहा

रचै शब्द मे अर्थ कौ बोध सुवृत्ति प्रमान।
शक्ति लक्षना व्यंजना तीन नाम सौ जान॥ ५॥
तहँ वाचक अरु लाच्छनिक व्यजक शब्द समर्थ।
वाच्य, लक्ष्य अरु व्यंग्य तह क्रम ते उपजत अर्थ॥ ६॥
शक्ति - वृत्ति ते मुख्य तँह वाच्य अर्थ है होत।
लख्यौ शक्तिसम्बन्ध मे कहि लक्ष्यार्थ उदोत॥ ७॥

अनियत बोध जु शब्द मे उपजत भाँति अनेक।
जानि व्यंजना-वृत्ति ते व्यंग्य-अर्थ सुविवेक॥ ८॥

वाच्यार्थ

दोहा

जाको जँह सकेत है तँह सुनि शब्द समर्थ।
बिन बिलम्ब जो समुझिये वहै वाच्य है अर्थ॥ ९॥

यथाः—

निरखि नद जसुमति विकल व्याकुल गोपी-ग्वाल।
गर्व सर्व हरि को हर्‌यौ कर धरि गिरि गोपाल॥१०॥

इहाँ वाच्यार्थ है। तथा प्रकरण ते 'हरि' शब्द मे इन्द्र वाच्यार्थ हैं।

अनेकार्थ मे वाच्याथ को निर्णय—

दोहा

गनि सयोग[1] वियोग[2] पुनि सहचर[3] तथा विरोध[4]।
अर्थ[5] प्रकर्नरु[6] चिन्ह[7] कछु और शब्द सँग[8] बोध॥११॥
त्यौ समर्थता[9] योग्यता[10] पाइ देश[11] समयादि[12]।
अनेकार्थ सम्बन्ध में वाच्य कीजिये यादि॥१२॥

क्रम ते, यथा—

कवित्त

चक्र धरै हरि[1] युद्ध-जय कौ, विषम डीठ[2],
हीन हर देव को मनोरथ अकूत के,

काम राम लछमन[3] के, राम अरजुन[4] से
सहाय कपिराज[5] काज कीन्हे है प्रभूत के।
सिन्धु[6] को उतरि, हरि सीता[7] को कलेस, जारि
कनक[8] को पुर, भय मेटे पुरुहूत के,
मन ते अगौन गौन ल्याइ पहुँचाइ द्रौन[9],
कौन कौन विक्रम बखानौ पौन-पूत[10] के ॥१३॥

इहाँ (१) चक्र-सयोग ते हरि=विष्णु (२) विषम डीठ वियोग ते हर=महादेव (३) लक्ष्मण सहचर ते राम=दाशरथि, (४) विरोध ते रामार्जुन, परशुराम, कार्तिवीर्य (५) अर्थ ते कपिराज=बाली, सुग्रीव, (६) प्रकरण ते सिन्धु=सागर, (७) दुःख-चिह्न ते सीता=जानकी, (८) पुर शब्द सयोग ते कनक=हेम, (९) सामर्थ्य ते द्रौन=गिरि, (१०) योग्यता ते पौन-पूत=हनुमान वाच्य है। **यथा वा—**

दोहा

अगनित मनिगन सम जगति गगन अँगन मै ज्योति[11]।
विभा विभावसु[12] मे सरस विभावरी मे होति ॥१४॥

इहाँ (११) गगन देश ते ज्योति=नक्षत्र, (१२) रैन समय ते विभावसु=अग्नि, वाच्य है।

जहाँ प्रकरणादि न होइ, तहाँ दोऊ अर्थ व्यंग है। यथा—

दोहा

घन वनमाल, बिसाल छबि सखि! घनकांति गँभीर।
केलि-धाम, अभिराम लखि स्याम कलिन्दी-तीर ॥१५॥

इहाँ कृष्ण अरु तीर, दोऊ प्रतीत हैं।

लक्ष्यार्थ—

दोहा

मुख्य अर्थ सम्बन्ध ही मुख्य अर्थ को बाधि।
रूढि पाइ वा काज लहि लक्ष्यारथ को साधि। १६॥

जलज, मडप, कुशल इत्यादि शब्द मे रूढि जो प्रसिद्धि, ताते लक्ष्यार्थ है।

'कहूँ कार्य जो व्यग्य है, ताके साधिवे को गगा मे घोप बसत है, इहाँ शीत पवित्रादि गुण अभेद ते ल्याइबे को गगाशब्द मे तीर लक्ष्यार्थ है।

पंचविध-व्यंग्यार्थ मे शक्ति-मूल वस्तुव्यंग्य—

सवैया

नाहिने और है ठौर अहै जन मूढ कठोर सबै है इहाँ हीं।
जाने न जे पर स्वारथ हेत, निकेत तजै, बसि खेत सदा हीं॥
पावस-पंथिय मीत! निवास को पास न गाँव है जाव जहाँ हीं।
ऊँचे उठे नभ देखि पयोधर जो बसि हौ तो बसौ घर याँही॥१७॥

इहाँ 'पयोधर' शब्दशक्ति-मूलभव स्वेच्छा-सभोग कीधौ वस्तु व्यग्य है।

शक्तिभव-व्यंग्य त्रिविध है:—

(१) शब्द-शक्तिभव, (२) अर्थ-शक्तिभव, (३) उभय-शक्तिभव।

(१) शब्दशक्तिभव

दोहा

शब्द फिरै जो फिरत सो शब्दशक्ति-भव लेख।
शब्द फिरै थिर व्यंग्य सो अर्थशक्ति-भव देख ॥१८॥

जैसे पयोधर शब्द मे जो उरोज व्यग्य है सो तात्पर्य मेघ, घनादि शब्द कहैं नाहीं होत, याते शब्द शक्ति-भव है।

(२) अर्थशक्ति-भव। यथा—

दोहा

ईखन सुषमा-पान को सुख चाहत कत बाल।
निरखन पिय मुख-चन्द ये रहत न सूधे हाल ॥ १६ ॥

इहाँ मुख-चद्र अर्थ ते नैननि मे कमल-तुल्यता, पान ते छवि मे सुधा-तुल्यता व्यग्य है, आनन-विधु, छवि-पान इत्यादि पर्याय हू के कहै होत है। याते अर्थशक्ति-भव है। व्रीडाभाव हू व्यग्य है। एक पद मे ये दोऊ भेद हैं।

वाक्य मे (३) उभयशक्ति-भव होत है। यथा—

सवैया

ज्यौ भरम्यो न रम्यो कित हू नित ही चित हूँ त्रय-ताप तपायौ।
वेद पुराननि ढूँढि फिर्‌यौ रचि तीरथ सयम नेम उपायौ॥
कुंजनि आजु 'कुमार' मिल्यौ जु अहीर की छोहरियानि छिपायौ।
पीर हरी हिय धीर धर्‌यौ व्रज-बीथी पर्‌यौ हरि हीरा हौ पायौ॥

इहाँ चौथी तुक के वाक्य मे "हीरा पायौ" जो परमानन्द पाइबो व्यग्य है, सो उभयशक्ति-भव है ।

शक्तिभव अलंकृति व्यंग्य, यथा—

सवैया

राम नरिन्द ! तिहारे पयान, धुकै धरनीधर धारनहारे ।
भीषम ग्रीषम सूरज तेज प्रताप के ताप के पुज पसारे ॥
रोष सतोष निहारत ही अरि गंजन हौ जन-रंजन भारे ।
दुज्जन सज्जन को तुम हीं रन-रुद्र, दया के समुद्र निहारे ॥२१॥

इहाँ रुद्र=भयानक वा उग्र । दया के समुद्र=मर्यादा-युक्त, वा मुद्रादानी, यह अर्थ ते रुद्र से समुद्र से हो, यह उपमा व्यग्य है ।

रसव्यग्य अनेक भाँति है, सो आगे कहिबी ।

लक्षणा-मूल (१) अर्थातरसंक्रमित व्यंग्य । यथा—

दोहा

समुझन गूढौ मूढ जन, लहि धन कौ परकास ।
तियनि सिखावत आवन हि जोबन विविध विलास ॥२२॥

इहाँ सिखाइबो चेतन धर्म है, ताते अचेतन जोबन वन मे लच्छित है, तामे बिन प्रयास सीखिबौ व्यग्य है, सो प्रकट ही है ।

कहूँ लच्छनामूल व्यग्य अप्रकटै है । यथा—

सवैया

आनि अचानक आनन मे विकसी मुसक्यानि की बानी सुहाई ।
नैननि मे चपलाई "कुमार" वसीकर गौन बसी गरवाई ॥

कान्ति प्रकास उरोज-कलीनि लसी बिलसी बसि बैन सुधाई ।
अंगनि देखी लुनाई जुन्हाइ सी छाई अछाई नई तरुनाई ॥ २३ ॥

इहाँ बिकसिबो फूल धर्म है, बसिबौ प्रभृति चेतन धर्म है—सो आनन, नेत्र, गति, उरोज, वचन, जोबन प्रभृति मे लच्छित है। तहाँ बिकसिवे मे सुगन्ध फैलिबौ, बसिवे मे नित्यानुराग, बिलसिवे मे युक्तानुराग, मिलन, योग्यता प्रभृति गूढ व्य ग्य है।

लक्षणा-मूल (२) अत्यंत-तिरस्कृत व्यंग्य। यथा—

सवैया

कीन्ही भलाई भली हमसौं, सु कहा कहिये जग मे जस लीजौ।
जाहिर है घर बाहिर रीति प्रतीति यहै पर-स्वारथ छीजौ॥
काज सुधारत ही सबको निसि बासर एने सदा सुख कीजौ।
हौ जगदीस सौ माँगौ असीस जु कोटि बरीसक लौ तुम जीजौ॥

इहाँ विपरीत लच्छना सो अपकारी मा उक्ति है। हम सो लटाई करी, बिराने लटे कौ। आप धन छीजौ सर्व बिसासी हौ, दुख देखौ, वेगि मरो इत्यादि व्यग्य रूढ है।

व्यग्य के प्रकटता के हेतु—

दोहा

वक्ता, श्रोता, काकु, थल, वाक्य, अर्थ, ढिग और।
देश, समय, प्रकरन प्रभृति रचत व्यंग्य बहु दौर ॥२५॥

(१) बक्ता के विशेष ते व्यंग्य। यथा—

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदि के, हौंहु गई सुनि हेलि हहारी।
भूली अकेली "कुमार" कहूँ डरपी लखि कुंजन-पुंज अँध्यारी॥
गागर के जल के छलकै, घर आवत लौं तन भीजिगौ भारी।
कंपत त्रासनि ये री बिसासिनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥२६॥

इहाँ कहैया (वक्ता) के विशेष ते स्वेद, कम्प, उसास प्रभृति सुरत-कार्य दुराइबो व्यंग्य है।

(२) सुनैया (श्रोता) के विशेष ते व्यंग्य। यथा—

सवैया

सूनौ परयौ सब मन्दिर है, बस रैनि पधारियो पंथ! सबेरे।
मेरी रहै इत सेज लखौ, उत सोवत सासु, सुनै जु न टेरे॥
सूझत साँझ परै तुमको न "कुमार" कही यह बात उजेरे।
पंथियमीन! डराति हौं जो कहुँ गात गिरौ जिनि ऊपर मेरे॥२७॥

इहाँ श्रोता के विशेष ते संभोग कीबौ व्यंग्य है।

(३) काकु जो स्वरविशेष ताते व्यंग्य। यथा—

दोहा

मोहन-मोहन को रचति भूषन दरपन जोहि।
बिन-भूषन हू तरुनि वे पिय हिय लेहि न मोहि? ॥२८॥

इहाँ प्रीतम मोहिवे को लीला विलासादि भूषण और हैं, यह काकु ते व्यंग्य है।

(४) अर्थ-विशेष ते व्यग्य । यथा—

सवैया

माइ रहै खुनस्यानी, अहै गुरु-नारिन मे छन हू न छमै है।
कैसे सखी ! उत खेलन आइये, काज "कुमार" सबै घर मै है ॥
औसर चौसर के गुहिबे को न, कुंजकलीनि हू बीनि हमै है।
धाम के काम कहूँ बिसराम बनै दिन मॉझ कै सॉझ समै है ॥२६॥

इहॉ अर्थ ते तथा कामी को (ढिग) पाइ बाहिर मिलाप न बनिहै, यहै व्यग्य है। और कुज थल ते, चौसर इहि मिस ते, धाम इहि देश ते, सॉझ समय ते, घर ही मिलाप बनिहै, यह उपदेशहू व्यग्य है।

(५) अन्यढिग पाइ व्यंग्य विशेष । यथा—

दोहा

मेरे कंकन-लाल-तन लाल ! लखत हौ ईठि ।
हौ वह, वे तुम, पै न अब वह सनेह की डीठि ॥ ३० ॥

इहॉ मेरे ककन-रतन मे सखी-प्रतिबिम्ब देखि औरै डीठि हती, सखी गये औरे डीठि भई, यह प्रच्छन स्नेह कहिवौ व्यग्य है।

(६) प्रकरण ते व्यंग्य। यथा—

दोहा

दई ! इहाँ ठाड़े कहॉ ? यह भय-ठान मसान ।
सुत-सनेह तजि जाउ घर, हिय रचि कठिन पखान ॥३१॥

यथाच—

सवैया

गीध की बातनि तासौं सनेह, तजौ जिय जो उपजे सुख गाहै।
काल को ख्याल न जानिये हाल जु मेटै रचै छिन मे मन चाहै॥
भूत परेत को साँझ समौ, यह देखौ घरीक धौं होत कहा है।
सोनो-सौ गात सलोनौ सुजात तजै सुत जात लजात न काहै॥३२॥

इहाँ गीध दिन ही मे भच्छनकाज-छम है, सो लोगनि टारतु है। स्यार राति महँ भच्छन-छम है, ताते दिन भर राख्यौ चाहतु है।

यह व्यग्य अपनी अपनी कार्य-सिद्धि गृध्र गोमायूपाख्यान प्रकरण ही ते है।

(७) कहूँ चेष्टा विलासादि ते व्यंग्य। यथा—

दोहा

इमि उरोज मुख ओज इमि ये दिन एसे नैन।
एसी बैस बनी वनी रची सची-सी ऐन॥३३॥

इहाँ नृत्य आदि मे हस्तकादिचेष्टा ही ते उरोज, मुख, बैस प्रभृति मे दाडिम, चन्द्रादि की उपमा, तथा अगुलिगननादि मे बैस प्रमानादि व्यग्य है।

यथाच—

सवैया

प्यारे! इसारति दीनी बिलोकि कें प्यारी तहाँ दृग चाह सौं दीनै।
केलि बिलासनि सौं सरसानी हँसै अरसानी सनेह नवीनै॥

नैन चलाय 'कुमार' त्यौं चंचल ओढ़ि लियौ मुख अंचल झीनै।
बैंदी सु धारि सिधारि गली, उर ऊपर धारि दुवौ भुज लीनै॥

इहाँ चेष्टा ही तें निद्रासमय में आगम, प्रनाम, बिदा कीबौ, भेट कीबौ प्रभृति व्यग्य है।

——०:——

इति श्रीहरिवल्लभ भट्टात्मज-कुमारमणि-कृते रसिकरसाले
चतुर्विध-व्यंग्य-कथनं नाम
द्वितीयोल्लासः। २॥

तृतीय उल्लास

शब्द-शक्तिभव रस-व्यंग्य

रसबोध मे विभावानुभावादिकौ क्रम नाहीं लक्षित होत, शतपत्र-भेदरीतितें ताते अलक्षितक्रम नाम है औरव्यग्य लक्षितक्रम नाम है।

रस-व्यंग्य के भेद

दोहा

रस अनुभाव दुहून के त्यौ आभास बखान।
भाव संधि सम उदय त्यौ भाव सबलता जान॥ १॥
रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विशेष।
स्वादु विशेषहि ते सबै भाव प्रभृति रस लेख॥ २॥
आनँद अकुर रूप तब भाव थाइ संचारि।
विभावादि कहवाइ वह बढ़ि रस होत विचारि॥ ३॥
ज्यौ मरिचादि सितादि मिलि पानक स्वादु विशेषि।
विभावादि थाई मिलै रसै होत त्यौं देखि॥ ४॥
लौकिक तथा अलौकिकै द्वै जॉनहु रस ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध त्यौ, कबित नृत्य मे और॥ ५॥
शृ गारादिक लोकगत कबित नृत्य मे ल्याइ।
होत अलौकिक है सबै रस आनन्द बढाइ॥ ६॥
सकल-लोक रस के सिरै आनॅद-लोक विलच्छ।
रसै एक अनुभवत हैं पंडित सहृदय दच्छ॥ ७॥

आनँदवृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि - गत सब रस कान्ह - सरूप ॥ ८ ॥
वहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव ॥ ९ ॥
मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ॥१०॥
गनि सिंगार रस, हास रस, करुन, रौद्र अरु वीर।
वत्सल, भय, वीभत्स त्यौं अद्भुत, शांत सुधीर ॥११॥

श्रृंगार-रस-लक्षण

दोहा

कृष्ण देव, रँग श्याम त्यौं रति थाई श्रृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि ॥१२॥

(१) संयोग श्रृंगार

दोहा

जहाँ परसपर अनुसरत दरस-परस सुखसार।
पिय - प्यारी कौ मिलन तहँ गनि सँयोग सिंगार ॥१३॥

यथा—

सवैया

दोऊ मिले रस के बस बातनि हास विलासन के रचि बैननि।
आपनी-आपनी चाह "कुमार" दुरावत ताहि प्रतीति की सैननि ॥
कंज दियौ कर ता मिस प्रीतम प्यारीकी बाँह गही सुख चैननि।
लाज लही तिय नाहीं कही पे निहारि रही अधमूँदे से नैननि ॥१४॥

इहाँ नायक-नायिका आलम्बन हैं। विलासादि उद्दीपन, भुजाक्षेप कटाक्षादि अनुभाव हैं, व्रीडा, हर्षादि सञ्चारी। इन मिलि पूर्ण रति स्थायी सुहृदय-हिये शृ गार-रस होत है, एसे सब रस होत है ऐसे सब रसहूँनि जानिए।

संयोग के द्वै भेद

दोहा

प्रथम भ ा सयोग मे भयौ न विरह विचार।
अमित विप्रलम्भक तहाँ रस सिगार निरधार ॥१५॥

यथा—

सवैया

केलि कै रग रची राति दूसरै द्यौस मिले नव संग तमी के।
आनन मे श्रम के जल की झलकी कन कॉतिन भॉति कमी के॥
आरसी मे प्रतिबिम्ब भई यौ "कुमार" लखी छवि साथ रमी के।
इंदु सो प्रीति करी अरविन्द मनौ अरविन्द मे बिन्दु अमी के॥१६॥

दूसरौ भेद लक्षण

दोहा

जैसे वसन कषाय मे चढ़त अधिक रग जोग।
त्यौ वियोग पर होत है अधिक सुखद सयोग॥१७॥

यथा—

सवैया

लोचन नीर अन्हाय के सायक पञ्च को ताप सह्यौ तन सूरौ।
सेज विधान तज्यौ परिधान "कुमार" बिसारौई पान कपूरौ॥

ऐसे वियोग मिलै सुघरी सुखपूर अपूरब भौ बढि रूरौ।
साध्यौ महातप ताकौ दुहूनि मिलेई मिल्यौ फल आनँद पूरौ॥१८॥

वियोग शृंगार-लक्षण

दोहा

परिपूरन रति है जहाँ इष्ट संग नहिं देखि।
विप्रलंभ शृंगार तहँ मानत सुकवि विशेषि॥१९॥
पूर्वरागते मानते त्यौं प्रवासते ल्याइ।
उत्कंठा ते आप ते पाँच भाँति सुबताइ॥२०॥

पूर्वानुराग-लक्षण

दोहा

सुनै लखै बाढ़त विरह बिन मिलाप अनुराग।
विरह जु तरुणी तरुन को भनि सो पूरब राग॥२१॥
थिर न[1] सोभि, सोभित[2] न थिर, थिर सोभित[3] अनुराग।
नील[1], कुसुम[2], मंजीठ रँग[3] त्रिविध सु पूरबराग॥२२॥

यथा—

कवित्त

बैठी कर मंजन झरोखै तू निहारि जब,
तब तें "कुमार" बढ़्यौ अभिलाषवृंद है,
रूप गरबीली बाल हाल सुधि कीन्ही क्यो न,
दीन सुधि-हीन भौ अधीन नँदनंद है।

प्यारे को मृदुल मन मुसक्यानि फासी डारि,
फेर-फेर हन्यौ दृग - कोरनि अमंद है,
अलक गुननि बाँधि, भृकुटी जँजीर साँधि,
उरज गुरज बीच राखगौ करि बंद है ॥२३॥

दोहा

दूति, सखी, बदी मुखहि गुन को सुनबौ जानि।
चित्र, स्वप्न, साक्षात त्यौं दरसन तीन प्रमानि ।२४॥

(गुण श्रवण) यथा—

सवैया

छैल छबीले की बात सुनै छकि सी रहै मादक मानौ पियो है।
ताहि को नाम "कुमार" सुहात है ताही को गीत कवित्त कियो है॥
रूप बखान सलोन कियौ तब ते सुनिबेही कौ नेम लियो है।
कान्हर के गुनगान नितू सुनि ही सुनि कीनौ निसून हियो है ॥२५॥

लिखिबौ त्रिविध है।

(१ चित्र-दर्शन) यथा—

कवित्त

कागद मे पाटी मे 'कुमार' भौन भीतिन मे,
चतुर चितेरिन सौ लिखति लिखाई है;
आरसी निहारि निज मूरति को अनुहारि,
मिलिबौ विचारि चित्त रीझति रिझाई है।
जकी सी छकी सी अनमिष डीठ ह्वै रही सी,
बोलति न डोलति थकी सी मोह छाई है,

रूप सौ विचित्र कान्ह-मित्र को विलोकि चित्र,
चित्रिनि भई तू चित्र पूतरी सुभाई है ।।२६।।

(२ स्वप्न-दर्शन)

दोहा

फनि, नर, किन्नर, सुर, कुवँर लिखे लखे सब ओर ।
है दधिचोर किसोर कौ यह किसोर चित-चोर ।।२७।।

(३ साक्षात् दर्शन) यथा —

कवित्त

झूलति हिंडोरे मे थकी सी तू निहारि प्यारो,
चित भयौ थकित लखत रूप तेरौ है,
कहत "कुमार" धार त्रिवली ललित पैरि,
रोमराजी भौंर पर्‍यौ भ्रमत घनेरौ है।
कुच गिरि चढ़त चकित ह्वै चिबुक बीच,
तिल की चिलक छवि छलक मे फेरौ है।
बेसर उरझि रही अलक विलोकि तेरी,
ललक उरझि रह्यौ रीझि मन मेरौ है ।।२८।।

मानते विरह

(१ लघुमान)

दोहा

जानि आन तिय छाँह निजु दर्पन मे पिय पास ।
रूसि रही पिय हँसि गही लही दुहुन रस-रास ।।२९।।

(२ मध्यम मान) यथा—

सवैया

धोखे परोसिनि वाम को नाम सुन्यौ पिय के मुख मानि सही तै।
खेलति चौपर प्रीतम पास "कुमार" न त्यौ रसरास लही तै ॥
काहे को ठानति नींद बहान हहा ? नहि मानत मेरी कही तैं ।
बानि परी, कहा जानि परी रिसतानि परी पट जो अबही तै॥३०॥

(३ गुरु मान) यथा—

सवैया

रैनि जग्यौ हठ देखि घनौ अलसान लग्यौ मनौ केलि दियौ है ।
भोर लौ जागि "कुमार" सखी पछिताई पछाँह को छोर लियौ है ॥
प्रीतम पॉय परयौइ चह्यौ, न कह्यौ सखि माने, यौ मान कियौ है ।
तेरे कठोर उरोज की संगति जानिये ओर कठोर हियौ है ॥३१॥

(मान छुडावन के भेद)

दोहा

साम, दाम, नति, भेद रचि विरस, रसातर ठानि ।
मान छुड़ावन के कहे छह उपाय ये जानि ॥३२॥
साम प्रभृति जहँ बनत नहि तहॉ विरस को लेखि ।
त्रास, हास करि मान को त्याग, रसान्तर देखि ॥३३॥

प्रवासवियोग-लक्षण

दोहा

दूरदेश-थिति ते जहॉ बनै न मिलिबौ जोग ।
भयौ, होत, ह्वै है तहाँ त्रिविध प्रवास-वियोग ॥ ३४ ॥

(१ भयौ [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरींन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू मे हरी धरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़्यौ घन मे लखि कै, तन ताप बढ़्यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा –

सवैया

वारक जाहि निहारि "कुमार" सुजीवन जीवन आपनौ कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहि सु बात सुनै हिय नाहि पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू ब्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है,
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौ बितावै वाम आगे द्यौस, राति है,
संग हू परी पे खरी तलफति तलप मे,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश ते है।

(गुरुवश ते वियोग) यथा—

कवित्त

बरषा विषमताई दुचिताई दूनी सूनी-
सेज में "कुमार" चित-चेत बिसराइये,
गुरुजन कठिन सठ न जाने पर-दुख,
पिय परबस परदेस रह्यौ छाइये।
धीरज हिरात सुनि नीरद की धीर धुनि,
उसीर-गुलाब-नीर ल्याये पीर पाइये,
सीरे उपचार और ताप को प्रचार घटै,
सीरे उपचार बढ़ी ताप क्यौं घटाइये॥ ३८॥

(४) उत्कठा ते विरह, विरहोत्कठिता के भेद मे जानिये।

(५) श्राप ते विरह, मेघदूतादि मे है, तथा पाडु प्रभृति में है।

ऐसे सभ्रम लज्जादिहू ते वियोग —

यथा—

दोहा

मिलि कुंजन बिछुरे घरी बरसत घन घिरि घोर।
ग्रीषम-ताप घटी न, पै बढ़ी ताप दुहुँ ओर॥ ३९॥

यथाच—

सवैया

कैसे "कुमार" सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौ दिस सूनौं।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौं॥

दूर विदेस के वास वियोग, सबै सहिये लहिये हिय ऊनौ।
भैंट की आस मे पास निवास मे दाहत है विरहानल दूनौ ॥४८॥

संयोग मे वियोग। यथा—

दोहा

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात।
पिय-हिय भेटति भुज भरै तिय जिय अति अकुलात ॥४१॥

पूर्वराग विरह की दस दशा—

नयनप्रीति, चिंता, सकल्पन, नींद-नाश, कृशता, रुचिहानि।
लाज-भंग, उनमाद, मूरछा, मृति ये कामदशा दस जानि ॥४२॥

कोऊ क्रम ते ये मानत हैं—प्रथम नयन-प्रीति, फिरि चिंता, फिरि सकल्पन, फिरि निद्रा-नाश, फिरि कृशता, फिरि विषय-निवृत्ति, फिरि लज्जा-नाश, फिरि उन्माद, फिरि मूर्छा, फिरि मृति।

क्रम ते यथा—

कवित्त

जब ते निहारे कान्ह, तब ते तिहारे ध्यान,
याके चित्त चित्र भयौ रूप तुव रैनि-दिन,
धारि जलधार पल धारत न नेकु पल
नैन है, "कुमार" तन छीन छीजै छिन-छिन।
भूल्यौ खान पान भोन, लाज धरै जिय को न,
मदन छकाई बाल देखौ लाल! हाल किन?
काम-सर जालसी कराल सी प्रवाल सेज,
परी घरी-घरी मोह भरी, डरी प्रान बिन ॥ ४३ ॥

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जडता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिबो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जडता चेष्टा - हानि है, मृति बिन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा बिन देखे नही कल, तासौ वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौ सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौ हिय अन्तर मे अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौ कै मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुते फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति मे छवि मानौ बिछाई हरी दरियाई ॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि बोली यौं बाल गरो भरियाई।
कैसी करौ हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

(३ स्मरण) यथा—

दोहा

दुरि दृग दै मुरि द्वार लगि रचि प्रनाम दुहुँ पानि।
चितई, चित मेरै अजौ वह बिसुरे नहि बानि ॥ ५० ॥

(४ गुण कथन) यथा—

कवित्त

बिन ब्रजजीवन बिलोके ब्रजबालनि के
जीवन रखैया न जतन दरसत हैं,
रास लास हास के "कुमार" वे विलास सौरि
बीस बिसै बिस सो हिये मे बरसत हैं।
छिनन छबीली सो तिरीछे नैन छोरन की,
सहज सनेह चितवन परसत हैं,
कान्ह चित्त-चोर मुख-चन्द के चकोर, स्याम
घनाघन मोर मेरे नैन तरसत हैं ॥ ५१ ॥

(५ उद्वेग) यथा—

दोहा

मदन वधिक के कदन मे बचे अधिक जे प्रान।
चन्द पिसाच निसाचरत नहि बचाइ है न्यान ॥५२॥

(६ प्रलाप) यथा—

सवैया

सूनेहि सेज मनावन लागत, लागति है निसि रूसनि थाप की।
कोइल बोलै "कुमार" कहूँ तब बोल न जानै विलास अलाप की॥

चित्र लिखे लखि तेरि ये सूरति, पूछति छेम तिहारे मिलाप की।
सारी निसा हीकिसाकहैआपकी काम कसाइ कसालेकी तापकी ।५३।

(७ उन्माद) यथा—

सवैया

देखि परै दसहू दिसि मे निसि द्यौसहि नन्द'कुमार' की मूरति।
भैंटिबे को उठि दौरि चलै भ्रमसौ भरि नैननि नीरसौं पूरति ।।
भौन सुहात न मौन रही गहि, वा मुख की छबि छाक बिसूरति।
तेरो सुभाउ री! कौन भयो? भई बाउरीसी लखि साँवरीसूरति ।।५४।।

(८ व्याधि) यथा—

कवित्त

सूखे तन, दूखे मन, पेखउ पियूख-कर-
कर विकराल ज्वाल जाल बरसत हैं,
देखि भेंटि ठाठ के कलिन्दी घाट बाट, सूने
दूने दुख प्रान परबस ह्वै त्रसत हैं।
कहत "कुमार" ये कदम्बन के फूल-भार,
सूल भये मदन-तुनीर से लसत हैं,
बेलिनि नबेलिनि के केलि कुंजपुंज आली !
खाली बनमाली बिन काली से डसत हैं ।।५५।।

(९ जडता) यथा—

दोहा

मुख न बैन, नैननि पलन हलन चलन तन हाल।
सुतन रतन-पुतरी भई, बिरह तिहारे लाल ! ।।५६।।

मृति-जो मरण दशा-सो मूर्च्छारूप के चित्त मे चाही बर्निये, नाही तो करुणरस होइ जाइ। यथा—

दोहा

तलफि तलफि सूनी तलप कलपि कलपि सुधि-हीन।
प्रानपियारी प्रान-बिन होत अलपजल-मीन ॥५७॥

कोऊ ये अवस्था कहत है—

दोहा

अँग व्याकुलता, पाण्डुता, अरुचि, अधीरज, ताप।
कृशता अरु असहायता, तन्मयता, संलाप ॥ ५८ ॥
मूर्च्छा औ उन्माद ये विरह दसा दस जान।
विरह कवित्तन मे सबै उदाहरन पहिचान ॥ ५९ ॥
पिय तिय मे जहँ एक के विरह, मरन है होत।
फिर जीवन की आस तहँ करुन वियोग उदोत ॥ ६० ॥

जैसे महाश्वेता मे कादम्बरी मे है, रति मे है।

इति शृंगाररस-व्यंग्य।

———:०:———

हास्यरस-लक्षण

दोहा

प्रमथ देव, सित रंग है, हास्य सुथाई हासु।
विकृत वेश, वचगति-सहित आलम्बन है तासु ॥ ६१ ॥

काटे हय, गय, नर-कंधर कबंधनि तें
रुधिर की धारैं अध ऊरध टुटति है,
जावक सलिल जानौं पूरन खजानौ भरी,
नल-जन्त्र चादरी सी चहूँघा छुटति है ॥६६॥

वीररस-लक्षण

दूहा

इन्द्र देव, रँग हेम-सम थाई भाव उछाह।
आलम्बन अरि जेय है वीर रसै निरबाह ॥६७।

(१ युद्धवीर) यथा—

सवैया

देखत लाखन राखस के गन लाखन बानर धीरज नाखे।
लाखन अंगद नील सुग्रीव हनूमत जुद्ध विचार है भाखे ॥
आवत रावन के सुत कौ लखि, राम उछाह हिये अभि लाखे।
धारि रुमचनि कौ तन कंचुक बान कमान हिये दृग राखे ॥६८॥

(२ दानवीर) यथा –

सवैया

कोटि चतुरदस जो मुहरैं गुरुदच्छिना देन कही पन धारै।
देत बच्यौ रघु के करवा कर देख, करै जिन मोह विचारै ॥
कीजिये आज पवित्र "कुमार" निसा बसि होम अगार हमारै।
हेत तिहारेई जीतत हौ धनदै, सु सबै धन देत सवारै ॥६९॥

(३ दयावीर) यथा—

सवैया

जीव के घातक हौ जु सिचा न छुधा बस पातक आतुर जागौ।
दीन दुरयौ सरनागत है, नहि ताहि सतावन को अनुरागौ॥
हौं सिबि नाम महीपति हों निज देहऊ देहुँ-गौ चाहौ सु मागौ।
आकुल होत क्यौं मोतनको भखियो तनु पोत कपोतको त्यागौ॥७०॥

(४ धर्मवीर) चौथो भेद मानत हैं। यथा—

कवित्त

राज जात क्यौ न आज, जीतौ दुजराज द्रोन,
चिन्ता चितहू तें तोन पाप की बहाइये।
कहत "कुमार" सब कौरव विजय लहौ,
वहौ विधि रूठत सु रूठोई कहाइये॥
भीम अरजुन गुरुजन-सीख मानौ एक,
धरम धरम राज-काज कौ सहाइये।
जाय किन प्रान ? तऊ बात न्यान साँच ही ते,
आन नहीं आनन ही मेरे सु कहाइये॥७१॥

वात्सल्य रस-लक्षण

दोहा

लोकमात दैवत तहाँ, पद्म-गर्भ सम रंग।
नेह थाइ वत्सल गन्यौ तहँ विभाव सुत-संग॥७२॥

यथा—

सवैया

सीस लसै कुलही, पग पैंजनि, मोतिन माल हिये रुचिरो है।
कांति "कुमार" लहै मुतियानि की द्वै दँतिया बतियाँ कहि सोहै॥
मात जसामति गोद लिए, बढ़ि मोद समातु नहीं मुख जोहै।
नंद को नंद, अनंद को कंद निहार री! मोहन मो मन मोहै॥७३॥

भयानक रस-लक्षण

दोहा

यम दैवत, रँग नील गनि आलम्बन भय-हेतु।
गन्यौ भयानक रस तहाँ भय थाई को चेतु॥७४॥

यथा—

सवैया

घोर प्रलै के घनाघन लै बरस्यौ मघवा व्रज वैर सौ जागत।
थावर, जंगम, जीव भ्रमै भभरें भय में भरि भौननि भागत॥
आकुल गोपिय-गोकुल ग्वाल बिहाल ह्वै अंक तें बालनि त्यागत।
तीर से नीर छरानिछरे बिछुरे बछरा डर गाइन लागत॥७५॥

बीभत्स रस-लक्षण

दोहा

काल दैव अति काल रँग, घिनि थाई तहँ लेख।
असुचि बात आलम्बिकैं रस बीभत्स विशेष॥७६॥

यथा—

कवित्त

गरदा से परे मुरदानि के रदासे तहाँ,
लीन्हे अंक बैठ्यौ सिरदार रंक प्रेतु है।
लै लै मुख कोरै ओरै आवत निकट दोरैं,
दाँत काटि आँत काढ़ि कीन्हौ हार हेतु है॥
पीठि जंघ अच्छनि कपोलनि प्रथम भच्छि,
आतुर छुधा सो रच्छ ह्वै रह्यौ अचेतु है।
हाड़नि हू चाखि डारै नाखिन ही आँखिन ही,
मूँदि, संग माखिन ही मास भखि लेतु है॥७७॥

अद्भुत रस-लक्षण

दोहा

थाई बिसमय पीत रँग, मनमथ दैवत जानि।
अचिरज युत आलम्बिकै रस अद्भुत पहिचानि॥७८॥

यथा—

सवैया

तात को सासन सीस असीस सो धारि वसी वनबास पधारयौ।
एक ही वान सँघारि घरी, दस चारि हजार निसाचर तारयौ॥
राघव बाँधि अपार पयोधि, "कुमार" सबै दल पार उतारयौ।
राखस कोटि मसासमजारि,ससासम मारिदसानन डारयौ॥७९॥

शात रस-लक्षण

दोहा

हरि दैवत, रँग कुंद सम, शम थाई तहँ होत।
आलम्बन परमार्थ लहि, कहि रस शांत उदोत ॥८०॥

यथा—

सवैया

ये तपसी जपसील सदा बसी, जे परिपूरन ब्रह्महि ध्यावै।
पुन्य गिरिंदनिकंदर-अंदर ह्वै निरद्वंद विनोद बढ़ावैं॥
ध्यान समै जिनके मृगसावक खेलत अंकहि संक न पावैं।
बठि विहंगम पास निवास के आनँद आँसुनि प्यास बुझावै॥८१॥

दया वीरादि में अहकृति है, यहाँ अहकृति को त्याग है। यह भेद है।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले रसव्यंग्यनिरूपणं नाम
तृतीयोल्लास॰॥

चतुर्थ उल्लास

अथ भाव-व्यंग्य-भेद—

दोहा

रस अनुकूल विकार सों भाव कहत कवि धीर।
चित्त-जनित आँतर कहत, दूजो है सारीर ॥ १ ॥
द्वैविध आंतरभाव है, थाई अरु संचारि।
स्तम्भादिक जे आठविध ते शारीर विचारि ॥ २ ॥

यद्यपि सात्त्विकौ आतर भाव है, पै शरीर ते प्रगट होत, यातें शारीर है।

स्थायी भाव व्यंग्य—

दोहा

माला-मधि ज्यौ सूत्र त्यौ विभावादि में आनि।
आदि, अंत, रस-माह, थिर थाई भाव बखानि ॥ ३ ॥
रति, हाँसी, अरु शोक, रिस, त्यौ उछाह, सुत-नेह।
भय, घिनि, विस्मय, शम तथा दस थाई गनि एह ॥ ४ ॥

(१) रतिस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्ट वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि तरुन तरुनि हिय चाह।
उपजत मनोविकार कछु, रति थाई तिहि माँह ॥ ५ ॥

यथा—

सवैया

कान्ति मनोहर मोहन की दृग पूरि "कुमार" सुधा-सी रही है।
कान दए गुन गान सुने पिय देखन चाह दुरै ही चही है॥
नैननि में, गति में, मति में, मृदु भाव सुभाव की रीति गही है।
नेहलता हिय ही सु लही जु नई दुलही में सही उलही है॥६॥

(२) हास्य स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

विकृत वेश, वच, कर्म, लहि, मन-विकार कछु होत।
हँसा तहाँ थिर भाव गनि बाढ़ै हास उदोत॥७॥

यथा—

सवैया

छोटो सौ वेश अपूरव पेखत, लोइन लोइनि के न अघानै।
घेरि नचै चहुँघा पुर-बालक, लै बलि भूप के आँगन आनै॥
देखि हँसी बलिराजवधू सब भोजन कों कछु देउ बखानै।
पावन मूरति वामनजू सुनि बैननि नैननि ही मुसक्यानै॥८॥

(३) शोक स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्टनाश लखि, सुनि, सुमिरि होत जु मनोविकार।
शोक सु थाई भाव है, करुना रस निरधार॥९॥

यथा—

सवैया

शम्भु बसी करिबे कौ सुरेसहिं काम पठायो, है काम महा कौ।
भाल के नैन निभालत ही, जरि पावक पावन भौ तनु ताकौ॥
पीउ विनासन हेतु विषाद, विलोकि मनोभव की अबला कौ।
रोष भयंकर मे उपज्यौ, जिय अंकुर संकर के करुना कौ॥१०॥

(४) रिस स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

वैरि पराभव ते भयौ जो आनँद प्रतिकूल।
मन-विकार सो रिस यहै, जानि रौद्र रसमूल॥११॥

यथा—

सवैया

जानकी कों हर लै गयौ राखस नीच न आपनी मीच निहारी।
ताप-तप्यौ हियरा सियरातु न जो सिय राघव पास न धारी॥
राम को सेवक रंक हौ आजु निसंक उलंघतु वारिधि-वारी।
रावन अंग कलंक समेतहि पंकज-सी लखौ लंक उखारी॥१२॥

(५) उत्साह स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

सौरज, दान, दया, धरम लहि आनँद अनुकूल।
मन-विकार सु उछाह है वीर रसहि हिय-फूल॥१३॥

यथा—

उठत अंग रोमंच सुनि, रन-दुंदुभि-धुनि घोर।
उर धीरज-अंकुर मनौं उगि उठे चहुँ ओर॥१४॥

(६) वत्सल स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

छोह भरी मुख तोतरी सुनि बतियाँ, लखि केलि।
सुत-सनेह वत्सल रसहिं थाई आनँद बेलि ॥१५॥

यथा—

कान्हर कौ विहसत वदन निरखि जसोमति मात।
गहि अँगुरी अंगन चलत अंगनि सुख न समात ॥१६॥

(७) भय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

नृप गुरु मुनि अपराध लहि, विकृत जीवरव लेखि।
उपजत मनोविकार कछु, भय थाई तहँ देखि ॥१७॥

यथा—

सवैया

दल भार अपार यौं राम के संग बढ़ै मनौ सिंधु तरंग बढ़ै।
बलवंतनि सौं रनजीति कहानि "कुमार" कहाँ न जहाँन पढ़ै॥
सुनि गाजत पावस की रितु अंबर घोर घनाघन जोर मढ़ै।
अरि-वग्ग यों दुग्ग दरीनि दुरे भ्रम-भीत से भीतरतें न कढ़ै॥१८॥

(८) घिनि स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अशुचि वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि उपजत मनोविकार।
घिनि थाई सो जानिये, रस बीभत्स अधार ॥१९॥

यथा—

मारि दुसासन, फारि उर, रुधिर अंग लपटाइ।
आवत भीम, तिन्है मिले धर्मराज दृग नाइ ॥२०॥

(९) विस्मय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अचिरज की कछु बात लखि, सुनि मन विकृत जु होत।
विस्मय थाई भाव सो अद्भुत रसहिं उदोत ॥२१॥

यथा—

सवैया

सारद पूनौ जुन्हाई विसारद पारद से छवि-पुंज पसारे।
चारु "कुमार" सबै छिति छावत छीर पयोनिधि-पूर विचारे॥
चंद अमंद विलोकि तहाँ सब लोक के लोइन कौतुक धारे।
रीझे न एक त्यो मेरे विलोचन तो-मुखचंद निहारनहारे ॥२२॥

(१०) शमस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

तत्त्व-बोध, दुख, दोष लहि जग अनित्य पहिचानि।
उपजत मनोविकार कछु शम थाई हिय मानि ॥२३॥

यथा—

सवैया

जा सनबंध ते बंधु गनै निज, अंध ! यहौ तन नाँहि ठयौ है।
होत "कुमार" न क्यौ निहचिन्त, सुखी जन मे जनवादि गयौ है॥
चेततु चेतन रूप इतै सुमिरे विष ये विष मोह छयौ है।
रे चित ! चंचल वंचक तू, जग चुबक बीच को लोह भयौ है ॥२४॥

इति स्थायीभाव-व्यंग

संचारी भाव-व्यंग्य—

दोहा

रति प्रभृतिक थाईनि में उपजत मिटत सुभाव ।
यातैं संचारी कहे निर्वेदादिक भाव ॥ २५ ॥

तथाच भरत—

श्लोकाः

निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमा ।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्तामोहो धृति स्मृति ॥ २६ ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥ २७ ॥
स्वप्नो विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्था तथोग्रता ।
मतिर्व्याधि स्तथोन्माद स्तथा मरणमेव च ॥ २८ ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः प्रयान्ति व्यभिचारिताम् ॥ २९ ॥

(१) निर्वेद-लक्षण

दोहा

तत्त्व-बोध, आपत्ति, दुख, ईर्ष्यादिक तें आनि ।
निज चिंता चित-वृत्ति जो, सो निर्वेद बखानि ॥ ३० ॥

यथा—

सवैया

तिय-हेत मँगाइ मनोरम फूल बिसाल है माल रसाल रची ।
घनसार घनौं घसि कुंकुम, चंदन, चंदमुखी-कुच खौरि खची ॥

सुधि सेवा सिपारसि नाम उचारि "कुमार" विचारत बुद्धि नची।
जड हौं कछु चित्त रचाइ यहै हरिकी अरचा चरचा न रची ॥३१॥

(२) ग्लानि-लक्षण

दोहा

आधि, तृषा, रति, प्रभृति जो लहैं गहै बल-हानि।
कछु मलीन चित-वृत्ति जो, सोई कहियतु ग्लानि ॥ ३२ ॥

यथा—

सवैया

जानै कहा ? नवला अबला, अबलाजन जो छल रीति करी है।
भोरतें साँझ "कुमार" त्यौ साँझ ते भोरलौ जागि जगाई खरी है ॥
पौढ़ि रही परजंक न जागति, मोहू सो लागति रोष भरी है।
लाल ! भली यह बाल मली अब मालती-माल-सी हाल परी है ॥३३॥

(३) शंका-लक्षण

दोहा

जो डर जिय अपराध को संका-भाव सुमानि।
वदन सोख वैवर्न्य तहँ, पार्श्व-विलोकन जानि ॥ ३४ ॥

यथा—

सवैया

हौं तो घरी घर ते इत भोरहि, गोहरे गाइ दुहावन आई।
आपनें स्वारथ ही के अहीर ! न जानौ "कुमार" जु पार पराई ॥
घेरु घनौ व्रज गाँव को जानत जानन देहु, करौ मनभाई।
लागि कपोलनि क्यौ दुरिहै यह जागी रदच्छद की अरुनाई ॥३५॥